CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

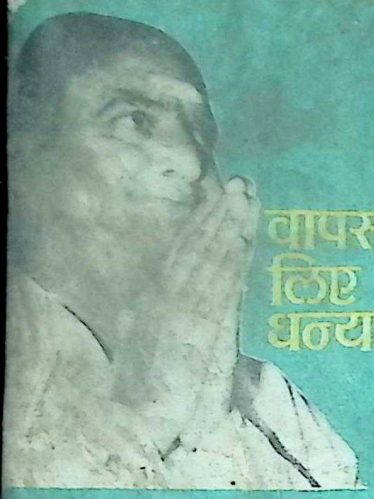

वापसी के लिए धन्यवाद

साप्ताहिक

दिनमान

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

23-29 सितंबर, 1984
1-7 आश्विन, 1906

रजत जयंती पर विशेष

दूरदर्शन का सिनेमा

रु. 2.50

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

ज्ञान विज्ञान का खजाना

पराग

बच्चों की सम्पूर्ण मासिक पत्रिका

(टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन)

अपना विज्ञापन दीजिए और लाभ उठाइये

-विज्ञापन दरें-

काला तथा सफेद		प्रति बार
पूरा पृष्ठ	–	रु. 1510
आधा पृष्ठ	–	रु. 760
वी. पी. पैनल	–	रु. 118
	(5.5 से.मी. × 5.5 से.मी.)	
रंगीन		
अंदर का पृष्ठ	–	रु. 3020
अंदर का पृष्ठ	–	रु. 2265

(काला तथा एक रंग)

अंतिम कवर – अंदर के पृष्ठ की दरों के उपरान्त – 10 प्रतिशत

विज्ञापन प्रबन्धक

पराग

7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-2

फोन : 270161 (10 लाइनें)

तन बदन का नूर गंजी कोहिनूर

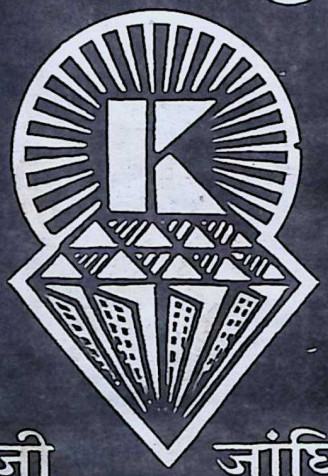

निर्माता:

कोहिनूर निटिंग मिल्स

११३, मनोहरदास कटरा कलकत्ता-७००००७

फोन 33 3312

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सरस्वती सीरीज़

हिन्द पॉकेट बुक्स

की गौरवशाली परम्परा में एक और कदम

श्रेष्ठ कृतियाँ
बड़ा आकार
कलात्मक मुद्रण
लेमिनेटिड कवर
बढ़िया कागज
कम मूल्य

काव्य
उपन्यास
जीवनी
आत्म-विकास
भोजन कला
स्वास्थ्य

प्रत्येक का मूल्य १० रु

सम्पूर्ण परिवार के लिये अन्य पठनीय पुस्तकें

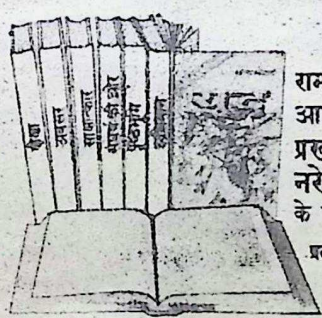

राम कथा पर आधारित प्रख्यात रचनाकार नरेन्द्र कोहली के उपन्यास

प्रत्येक का मूल्य १० रु.

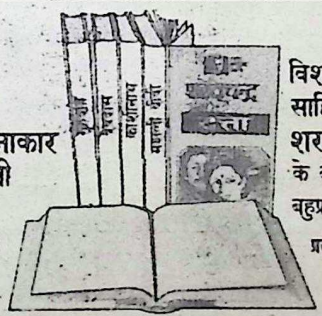

विश्व-विख्यात साहित्यकार शरत्चन्द्र के बहुचर्चित एवं बहुप्रशंसित उपन्यास

प्रत्येक का मूल्य १० रु.

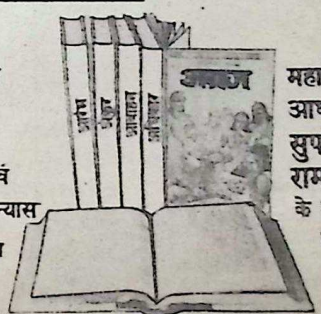

महाभारत पर आधारित सुपरिचित लेखक रामकुमार भ्रमर के उपन्यास

प्रत्येक का मूल्य ८ रु.

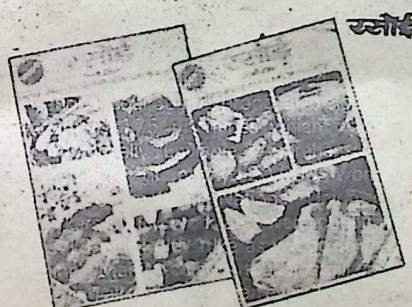

रसोई

भाग 1: सब्जी हरी 45.00
भाग 2: खाद्य हरी 55.00

स्वादिष्ट भोजन और अनेक व्यंजन बनाकर खाइए और खिलाइए।

- बाजार जाने की जरूरत नहीं, घर पर ही सब कुछ पकाएं।
- रसोई की देखभाल, सजावट और स्वच्छता के सही तरीके बताती है।
- टेबल-मेनर्स, मेहमानवाजी के नुस्खे और भोजन परोसने की विधियों से भरी-पूरी।
- सूप, सलाद, चटनी, अचार - मुरब्बे, सैंडविच, आमलेट, पुडिंग, बनाने की सरल विधियों से परिपूर्ण, पहली पुस्तक में।
- मांस के नाना विधि पकवान दूसरी पुस्तक में।
- दोनों पुस्तकें गृहणियों के लिए बेहद उपयोगी।

यदि आप घर बैठे ये पुस्तकें मंगाना चाहें तो नीचे का कूपन भर कर भेजें

प्रेषक सारदी सेवक

प्रिय महोदय
जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली - ३२

मुझे निम्न पुस्तकें वी. पी. द्वारा भेज दें। मैं वी. पी. का पूरा मूल्य चुकाने के लिए तैयार हूँ।

पूरा मूल्य सूची।

अन्य पसंद पुस्तकें

1. _____ 2. _____
3. _____ 4. _____

मेरा नाम: _____

मेरा पता: _____

_____

हस्ताक्षर

हिन्द पॉकेट बुक्स सभी रेलवे, रोडवेज बुक-स्टालों पर उपलब्ध हैं। यदि फिर भी आपको प्राप्त करने में कोई कठिनाई हो, हमें निम्न पते पर लिखें।

हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा. लिमिटिड जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110 032

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिनमान

भाग 20 अंक 39

23–29 सितंबर, 1984

1–7 आश्विन, 1906

संपादक :
कन्हैयालाल नंदन

सहायक संपादक :
जितेंद्र गुप्त

विशेष संवाददाता :
रामसेवक श्रीवास्तव

मुख्य उपसंपादक :
महेश्वरदयालु गंगवार

राजनैतिक संवाददाता :
जवाहरलाल कौल

संपादकीय सहकर्मी
शुक्ला रुद्र
त्रिलोक दीप
विनोद भारद्वाज
सुषमा जगमोहन
उदयप्रकाश
धीरेंद्र अस्थाना.

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911
व्यवस्था, विज्ञापन तथा प्रसार :
7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002
दूरभाष: 270161
बंबई कार्यालय :
डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001
दूरभाष : 268271
अहमदाबाद कार्यालय :
139, आश्रम रोड, अहमदाबाद-9
दूरभाष : 77631
कलकत्ता कार्यालय :
13/1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700 069
दूरभाष: 244243
मद्रास कार्यालय :
63, मोंटियथ रोड, एग्मोर, मद्रास-8 दूरभाष : 83661
पुणे कार्यालय :
407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002
दूरभाष: 25447
लंदन कार्यालय :
26, स्टेशन एप्रोच, सडबरी वेंबले, मिडिलसेक्स, लंदन, यू.के.
लंदन दूरभाष : 01-903-9696

इस सप्ताह

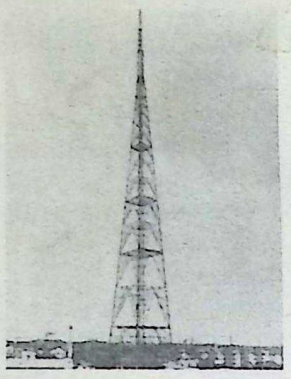

9 हर रोज देश के किसी न किसी प्रदेश में दूरदर्शन का का एक नया खंभा खड़ा किया जा रहा है. लेकिन हकीकत यह है कि जब बिजली गुल हो जाने के कारण राजधानी दिल्ली के लोग ही पूरा कार्यक्रम नहीं देख पाते हों तो जहां बिजली कुछ घंटे ही मयस्सर हो पाती है वहां के लोग अपने घरों में इस महंगे डब्बे को रखकर भला कौन सुख भोगेंगे. फिर दूरदर्शन के सुभान अल्लाह कार्यक्रम ही कौन आम आदमी की जिंदगी को बेहतर बना सकेंगे. तब यह तामझाम क्यों? इस प्रश्न का उत्तर खोजती इस बार की आवरणकथा.

21 आखिरकार राजशक्ति ने जनशक्ति के आगे घुटने टेक दिये. आंध्रप्रदेश में मुख्यमंत्री के पद पर रामराव की वापसी भारतीय लोकतंत्र के इतिहास की एक अनोखी घटना है. यह पहला मौका है कि कोई बर्खास्त मुख्यमंत्री एक महीने बाद ही अपने पद पर बहाल किया गया. लेकिन यह कैसे हुआ? हैदराबाद के सांप्रदायिक दंगों से लेकर रामराव के शपथग्रहण तक की कहानी.

23 'देखो हम कहते हैं यह गलत है. राजीव जी का इससे क्या बिगड़ेगा. जब संजय जी थे तब भी हम इंदिरा जी के थे. राजीव जी हैं तब भी हम इंदिरा जी के हैं.' पार्टी में 'वफादारों' की उपेक्षा से चिंतित सांसद एफ. एम. खान का कहना है, जब कि राजीव गांधी ने कहा है कि श्री खान चाहें तो पार्टी छोड़ सकते हैं. इस विवाद पर श्री खान से लंबी बातचीत.

आवरण : दूरदर्शन का उपग्रह एंटीना

कलापक्ष : रविशर्मा

5 मत और सम्मत
7 उनका कहना है
8 जरिया नजरिया
9 दूरदर्शन का स्वप्न लोक, ये कार्यक्रम किससे लिए हैं, कैमरे के सामने जाना तोपखाने का सामना करने के बराबर है (आवरण कथा)
20 राजनैतिक डायरी
21 आंध्र में रामराव की वापसी; एफ. एम. खान से बातचीत; नागपुर में इंका छात्र संगठन के सम्मेलन की असली तसवीर (राष्ट्र)
27 पंजाब : फिर जहर घुल रहा है; बिहार: रोगी पागल हैं या कि अधिकारी; राजस्थान : पुष्कर पर हिप्पियों का हमला (प्रदेश)
32 दुनिया भर की.
33 श्रीलंका : कौन कहता है कि सरकार आतंकवादी नहीं हो सकती? पाकिस्तान की हलचल; चुन की जापान यात्रा (विश्व)
36 सावधान! हमारे देश में स्त्रियों की संख्या घट रही है; मुस्लिम देशों में औरत (नारी जगत)
41 मानवभ्रूण पर शोध की नैतिकता (विज्ञान)
42 गावस्कर की वापसी (खेल और खिलाड़ी)
44 फिल्म उद्योग को डर किसका है (फिल्म)
45 पर्दे के पार
46 बिहार राज्य कला अकादेमी (कला)
47 बेचैन साठ साल (साहित्य)
48 चरित चर्चा
49 बिरजू महाराज प्रसंग (रंगमंच)
50 संस्कृति समाचार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मत और सम्मत

2-8 सितंबर

शर्म आती है

● **भारत की झोली में पदक नहीं माल :** सुशील जैन की रपट ने हमारे खेल अधिकारियों और खिलाड़ियों की एक दूसरी ही तस्वीर पेश की है. वैसे भी पदक तालिका देखने के बाद ऐसा लगता था कि भारत ने भी ओलिंपिक का बहिष्कार किया है. शर्म आती है यह पढ़कर कि नशे में धुत कुछ भारतीय खिलाड़ी और अधिकारी समुद्र के किनारे मृगनयनियों के फेर में पुलिस द्वारा पकड़ लिये गये.

—ललन मिश्र, समस्तीपुर

● काश, भारतीय खेल अधिकारियों तथा खिलाड़ियों ने देश की 70 करोड़ जनता की भावना और राष्ट्रीयता का ख्याल किया होता. सुशील जैन को ऐसे विचार प्रधान लेख के लिए बधाई.

—सत्यदेव यादव, इलाहाबाद

● ओलिंपिक से भारतीय खिलाड़ी और पदाधिकारी अगर पदक लाते तो देश के सम्मान के पात्र बनते, माल लाये तो क्या हुआ, अपने परिवार के सम्मान के पात्र तो बने. —देवेंद्रकुमार चौरसिया, आजमगढ़

● सुशील जैन ने खेल अधिकारियों की वास्तविकता सामने लाकर भारतीय खेल जगत का हित किया है, पर उन्हें यह भी बताना चाहिए कि 'आंखों देखा हाल' सुनाने के लिए कमेंटेटरों का चयन करने में क्या क्या अनियमितताएं बरती जाती हैं.

—अमरेश मिश्र, ग्वालियर

● राष्ट्रीय सम्मान को दांव पर लगाकर क्लब में जुआ खेलने वाले अधिकारियों को फांसी भी दे दी जाये तो कम होगा.

—रमाकांत सिंह 'तेगाछी', खगड़िया (बिहार)

हर मोड़ पर दुःशासन

● जम्मू कश्मीर के झटके से लोकतंत्र संभल भी नहीं पाया था कि आंध्रप्रदेश में उसकी आबरू पर फिर हमला हुआ. द्रौपदी का तो एक सभा में चीरहरण हुआ था, लेकिन लोकतंत्र रूपी द्रौपदी का तो विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश की हर सभा में चीरहरण हो रहा है. फर्क यह है कि द्रौपदी का चीरहरण करने वाला सिर्फ एक दुःशासन था, लेकिन यहां तो हर मोड़ पर दुःशासन खड़ा है. कोई कृष्ण भी तो नहीं जो लोकतंत्र की लाज रख ले.

—परमजीत सिंह, बरेली

● जवाहरलाल कौल की रपट सियासी बेशर्मी का सही आकलन करने में सफल हुई है. पूरे देश में आज राजनैतिक दुर्गंध व्याप्त है. कल जो विधायकों की पहचान कराके रामराव का बहुमत दिखाने राष्ट्रपति के पास गये थे, आज वे मंत्री बनकर भास्कर राव की बगल में जा बैठे हैं. ईमान तराजू पर तौला जा रहा है: पलड़ा पद और पैसे का भारी है. संविधान, परंपराएं एवं मर्यादाएं सूखे पत्ते की तरह उड़ रही हैं. लोकतंत्र कटे मुर्गे की तरह फड़फड़ा रहा है.

—राघवेंद्रनारायण मिश्र, हजारीबाग

● आवरण पृष्ठ पर ऊपर रामलाल का और नीचे कुश्ती प्रतियोगिता का चित्र देखकर ऐसा लगा रामलाल भास्कर राव तथा रामराव के बीच कुश्ती प्रतियोगिता करवा रहे हैं.

—सुनीलकुमार मेहरोत्रा, शाहजहांपुर

रातोंरात नायक बना देते हैं

● **सवालों के दायरे में जनसंचार माध्यम :** संतोष तिवारी ने बहुत सटीक बात कही है. संचार माध्यम व्यापारिक हो गये हैं, इसीलिए विघटनकारी समाचारों को अधिक स्थान देते हैं. छविराम, फूलन देवी को नायकत्व प्रदान करने और इमाम बुखारी, भिंडरांवाले को रातोंरात समुदाय विशेष का प्रवक्ता ये संचार माध्यम ही बना देते हैं.

क्या अब भी कमांडो दस्तों के मारे गये बहादुरों या उनके नजदीकियों के संबंध में कोई प्रामाणिक खबर या चित्र प्रकाशित हुआ है? नहीं. हां, भिंडरांवाले का भाई कोई विघटनकारी समाचार दे तो देखिए, फोटो सहित छापा जायेगा. —मंजु वर्मा, मथुरा

वे नाराज हैं

● **वे भगोड़े हैं या विद्रोही :** रामसेवक श्रीवास्तव का लेख पढ़ा. भगोड़े सैनिकों के साथ नरमी का बर्ताव किया गया तो सेना

पिछले सप्ताह

10-16 सितंबर

देश

10 सितंबर : बिहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री भोला पासवान शास्त्री का नयी दिल्ली में देहांत. भारतीय किसान यूनियन की रैली रद्द. पंडित गोविंद वल्लभ पंत के 97वें जन्मदिन पर दिल्ली में नेताओं द्वारा भावभीनी श्रद्धांजली. प्रो. यू. आर. राव अंतरिक्ष आयोग के नये अध्यक्ष नियुक्त.

11 सितंबर : शोर शराबे के बीच आंध्र विधानसभा बिना विश्वास मत पर बहस के स्थगित. विश्वविख्यात न्यूयार्क फिलहार्मोनिक आर्केस्ट्रा के कंडक्टर जुबिन मेहता का नयी दिल्ली पहुंचने पर भव्य स्वागत. नयी दिल्ली में संपन्न ईरानी क्रिकेट ट्राफी पर शेष भारत की टीम का अधिकार.

12 सितंबर : नागपुर के राष्ट्रीय छात्र संघ सम्मेलन में अस्तव्यस्तता. आंध्रप्रदेश विधानसभा पुनः स्थगित. गुरुदासपुर के छिन्ना गांव के पास आतंकवादियों द्वारा एक बस का अपहरण कर नौ व्यक्तियों की हत्या.

13 सितंबर : आंध्रप्रदेश विधानसभा के अस्थायी अध्यक्ष बागा रेड्डी द्वारा त्यागपत्र और राज्यपाल द्वारा सुलतान-उद्दीन उवैसी आंध्र विधानसभा के नये अध्यक्ष नियुक्त.

14 सितंबर : गुरुदासपुर के पास हत्याकांड के विरोध में पंजाब और चंडीगढ़ बंद. हरियाणा के मुख्यमंत्री भजनलाल द्वारा अपने मंत्रिमंडल का विस्तार. आंध्रप्रदेश विधानसभा का अधिवेशन 20 सितंबर को बुलाने का निर्णय. दिल्ली विश्वविद्यालय में पूर्ण हड़ताल.

15 सितंबर : बंगलूर में महिला कांग्रेस के पहले अधिवेशन में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा सरकार के वर्त्तमान ढांचे में परिवर्त्तन करने से इंकार. डाक और तार विभाग के कर्मचारियों को 25 दिन की मजूरी के बराबर बोनस देने की घोषणा.

16 सितंबर : भास्कर राव के इस्तीफा देने के बाद आंध्र प्रदेश में तारक रामराव द्वारा पुनः मुख्यमंत्री पद की शपथ ग्रहण.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पिछले सप्ताह

10-16 सितंबर

विदेश

10 सितंबर : इराक द्वारा युद्ध समाप्ति के बाद ही ईरान पर अपहृत विमान लौटाने का निर्णय. सोवियत विदेश-मंत्री आंद्रेई ग्रोमिको द्वारा संयुक्त-राष्ट्र महासभा के अधिवेशन में शामिल होने का निश्चय. कोलंबो में श्रीलंका फ्रीडम पार्टी के कार्य-कर्त्ताओं पर आंसू गैस.

11 सितंबर : कोलंबो से जाफना जा रही एक बस का विद्रोहियों द्वारा अपहरण कर 15 तमिलों की हत्या. पाकिस्तान के प्रतिपक्षी नेता नवाबजादा नसरुल्ला खान कराची में नजरबंद. अमेरिकी राष्ट्रपति रीनाल्ड रेगन की सोवियत विदेशमंत्री ग्रोमिको से 28 सितंबर को मुलाकात की पुष्टि से डेमोक्रेटिक पार्टी के उम्मीदवार वाल्टर मांडेल के खेमे में खलबली.

12 सितंबर : बंगलादेश के प्रतिपक्षी मोर्चे द्वारा राष्ट्रपति हुसैन मुहम्मद इरशाद को आंदोलन की धमकी. जातिवाद के खिलाफ संयुक्तराष्ट्र की विशेष समिति द्वारा दक्षिणी अफ्रीका में हिंसा के विरुद्ध रोष व्यक्त.

13 सितंबर : मलयेसिया सरकार द्वारा उग्रपंथियों के विरुद्ध सख्त कदम उठाने के निर्देश. साउदी अरब द्वारा नयी वायु प्रतिरक्षा प्रणाली विकसित करने का फैसला. इस्राइल की शिमोन पैरेज की लेबर पार्टी तथा याजिक शमीर की लिकुड पार्टी की मिली जुली सरकार को संसद का विश्वास प्राप्त.

14 सितंबर : पाकिस्तान के लोकतंत्र बहाली आंदोलन द्वारा चुनाव के बहिष्कार का निश्चय. तमिलों के नरसंहार के विरोध में जाफना की दुकानें बंद.

15 सितंबर राजकुमारी डायना द्वारा एक और पुत्र को जन्म. मोरक्को में पहले नगरीय चुनाव में वामपंथियों को बहुमत प्राप्त. बंगला देश के राष्ट्रपति जनरल इरशाद द्वारा धीरे-धीरे फौजी कानून में ढील देने का निश्चय.

16 सितंबर : इस्राइल की नयी सरकार द्वारा अपने मंत्रिमंडल में एक अरब डालर की कटौती करने का निर्णय.

में असंतोष फैल सकता है. इस बारे में मैंने कुछ सैनिकों और अपने भाई से, जो इस समय मेजर हैं, बातचीत की है. वे लोग बहुत नाराज हैं. —बीरेंद्रपाल सिंह, मुजफ्फरनगर

अधूरी है यह दास्तान

● पैसा दो, पद लो : राजेंद्र कमल की रपट बिहार लोक सेवा आयोग में व्याप्त भ्रष्टाचार की अधूरी दास्तान है. मंजूर अहमद ही नहीं, पूरे छात्र समुदाय के साथ अमानवीय खेल खेला जा रहा है. बिहार लोक सेवा आयोग में एक निम्नवर्गीय कर्मचारी से लेकर उच्च पदाधिकारी तक पैसे के इस खेल में शामिल हैं. अगर लोक सेवा आयोग में इसी तरह भ्रष्टाचार का खेल होता रहा तो मेधावी छात्रों का भविष्य अंधकारमय होता जायेगा और अंततः बिहार आयोग में प्रतियोगिता परीक्षा के बदले 'रुपयों की प्रतियोगिता' का बोलबाला बढ़ता जायेगा.

—राजीव सहाय, पटना

● यह विवरण गलत तथ्यों पर आधारित है. तथ्य यह है कि सतीश प्रसाद द्वारा पटना उच्च न्यायालय में दायर याचिका के अनुसार उन्हें अदालत ने भूतलक्षी प्रभाव से कभी भी आरक्षी उपाधीक्षक के पद पर नियुक्त करने का आदेश नहीं दिया, बल्कि न्यायालय ने सी. पी. किरण की नियुक्ति को वैध करार देते हुए सतीश प्रसाद को भी आरक्षी उपाधीक्षक के पद पर नियुक्त करने का आदेश सरकार को दिया है.

—एल. एन. दास, अधिवक्ता, पटना

उनका भी भला, आपका भी

● 26 अगस्त-1 सितंबर : भला हो मुद्राराक्षस का जिन्होंने एक वक्तव्य देकर 'रंगमंच' स्तंभ के लिए नेमिचंद्र जैन को, जो कई हफ्तों से इसमें सिर्फ भरतू की टिप्पणियां दे रहे थे, कुछ लिखने का मसाला दे दिया-आपको भी, एक वाद विवाद खड़ा करने का. अकबर इलाहाबादी से साभार : 'कहते हैं बहस कीजिए और फीस लीजिए'.

—श्रीलाल शुक्ल, लखनऊ

भूमिका विज्ञापनों की

12-18 अगस्त में प्रकाशित समीक्षा **माल नहीं विचार को प्रचारित करते** विज्ञापन पढ़कर खुशी हुई कि बैनेट कोलमैन एंड कंपनी ने एक ऐसी पहल की है जो आज की सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुए बहुत जरूरी मानी जा सकती है. उपभोक्तावादी समाज की मानसिकता बहुत कुछ उत्पादन और बाजार से निर्धारित होती है. अगर ऐसे विज्ञापन, जो सामाजिक समस्याओं और स्थितियों पर सही जगह चोट करते हों, लगातार सामने आयें तो इसका कोई न कोई सकारात्मक असर जरूर पड़ेगा.

मुझे लगता रहा है कि दहेज जैसी समस्या ही नहीं अगर पंजाब या भिवंडी जैसी स्थितियों के विस्फोटक रूप में प्रगट होने के पहले ऐसें विज्ञापन लगातार आते रहते तो वह दूरदर्शन पर या आकाशवाणी या सरकारी माध्यमों से होने वाली अपीलों से कहीं ज्यादा कारगर और प्रभावी होते.

—असगर वजाहत, नयी दिल्ली

● अगर बड़ी बड़ी कंपनियां देश के हित को ध्यान में रखकर स्वस्थ विचारों के प्रचार में रुचि लें तो जनता का तो भला होगा ही, उन्हें भी सम्मान मिलेगा. पुरस्कृत विज्ञापनों का संदेश 'दिनमान' ने हम तक पहुंचाने का आश्वासन दिया है, उसके लिए उसे अग्रिम बधाई.

—अवधेश श्रीवास्तव, हापुड़

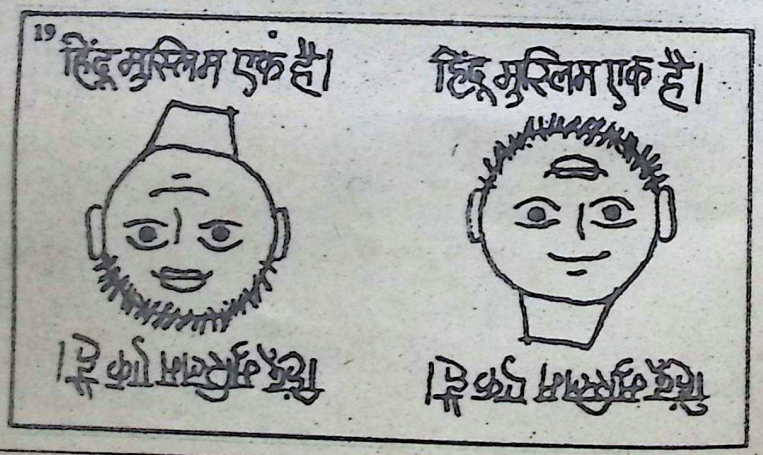

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

● **प्रोजेक्शन दूरदर्शन की भ्रूण हत्या :** स्पष्ट करना चाहूंगा कि उक्त प्रकार के प्रोजेक्शन टी. वी., वीडियो का निर्माण बंबई की एक कंपनी (आर. डी. इंटरप्राइजेज) द्वारा लगभग एक वर्ष पूर्व आरंभ किया गया था. डिपी टी. वी. प्रोजेक्शन सिस्टम के नाम से निर्मित इस विधि द्वारा टी.वी., वीडियो की तस्वीर अपने वास्तविक से चार गुना बड़े आकार में अतिरिक्त पर्दे पर देखी जा सकती है. इस प्रोजेक्शन की कीमत भी मात्र 6000 रुपये है और इसे 25 फीट दूर से आराम से देखा जा सकता है.

—दिनेश कुमार दुबे, गंजबसौदा (म.प्र.)

29 नहीं 28

2-8 सितंबर के दिनमान में आपने आदरणीय उदयनारायण तिवारी के निधन का समाचार प्रकाशित किया. पर उसमें एक तथ्यात्मक भूल है. निधन 29 जुलाई को नहीं 28 जुलाई को हुआ.

—कैलाशचंद्र भाटिया, मंसूरी
(भूल के लिए खेद है—सं.)

● बेनेट कोलमैन एंड कंपनी की यह पहल सामयिक और अच्छी लगी. व्यावसायिकता और बाजारूकरण ने मूल सामाजिक समस्याओं से कटकर विज्ञापन को जो रूप प्रदान किया है उससे सामाजिक-सांस्कृतिक दोनों ही स्तरों पर भयावह स्थितियां पैदा हो रही हैं. इसलिए सामाजिक उपादेयता की दृष्टि से यह एक सामयिक कदम ही नहीं, 'समूचा विज्ञापन अपने आप में एक भाषा' की उक्ति को पुष्ट करने वाला एक प्रयास भी है.

—प्रदीप मांडव, नयी दिल्ली

● शिक्षा प्रणाली के बारे में प्रकाशित विज्ञापन बहुत गहरी चोट करता है. मैं एक छात्र हूं और मुझे हमेशा लगता है कि यह शिक्षा प्रणाली छात्रों के दिमाग को एक जीवित मनुष्य का अंग नहीं, किताबी पन्नों का कूड़ाघर समझती है.

—आलोक भटनागर, नयी दिल्ली

● वस्तुओं का विज्ञापन देना बहुत कठिन काम नहीं है, लेकिन यही बात अगर किसी 'विचार' या फिर किसी सामाजिक बुराई को उजागर करने वाले विज्ञापन के बारे में हो तो यह एक मुश्किल बात बन जाती है. यह जानकर बहुत खुशी हुई कि बेनेट कोलमैन एंड कंपनी ने इस दिशा में पहल की और ऐसे विज्ञापनों की एक प्रदर्शनी भी आयोजित की. और भी संस्थानों को इस दिशा में पहल करनी चाहिए.

—महेंद्रपाल शर्मा, नयी दिल्ली

उनका कहना है

चंद्रशेखर

मीर जाफर मरा नहीं है. वह जी. एम. शाहों और भास्कर रावों के रूप में आज भी जीवित है.

—पत्रकार एम. वी. कामथ

एक या दो विधायकों को तोड़ना तो संभव है, लेकिन अगर तेलुगु देशम के 191 विधायक टूटकर निकलते हैं तो इसके लिए इंका को कैसे जिम्मेदार ठहराया जा सकता है.

—इंका महासचिव राजीव गांधी

जो भी अगला प्रधानमंत्री बनने का सपना संजोये है, वह मूर्खों के स्वर्ग में है और किसी दिमागी गड़बड़ी से पीड़ित है.

—जपा अध्यक्ष चंद्रशेखर

मैं हिंदुस्तान में होता तो बेरोजगारों की कतार में होता.

—प्रख्यात संगीतकार जुबिन मेहता

कोई भी ऐसी सभ्यता का हिस्सा नहीं होना चाहता जो खबरें पढ़ती तो हो, पर उनसे कोई ताल्लुक नहीं रखती हो. निश्चय ही कोई पत्रकार ऐसा नहीं चाहता.

—'टाइम' में रोजर रोजेनब्लांट

अभी मैं रिटायर होने के बारे में कैसे सोच सकता हूं, अभी तो मैं सीख रहा हूं.

—74 वर्षीय फिल्म अभिनेता अशोककुमार

वाशिंगटन मेरा मक्का जरूर है, लेकिन बरेली में दुकानदारों द्वारा पहचाने जाने का भी अपना ही आनंद है.

—अमेरिका निवासी भारतीय पत्रकार इंद्रजीत बघवार

हर कलाकार अकेलेपन से त्रस्त है. कोई इसे मानता है, कोई नहीं. हम हमेशा यही सोचते रहते हैं : मेरा रोल, मेरी वेशभूषा, मेरा स्वास्थ्य, मेरा, मेरा, मेरा...

—फिल्म अभिनेत्री सारिका

हमने इससे कोई पूंजी नहीं बनायी और न ही कोई व्यापारिक फायदा कमाया है. वे तो दूसरे हैं जो कमला की 'कहानी' को भुना रहे हैं.

—पत्रकार अश्विनी सरीन

सदाचारी

अगर मेरे राजनीति से संन्यास लेने से विपक्षी एकता होती हो मैं उसके लिए भी तैयार हूं.

—लोसपा अध्यक्ष हेमवतीनंदन बहुगुणा

एक वोट एक पिसो (मैक्सिको की मुद्रा) से ज्यादा कीमती होता है. लेकिन पिसो चुराने पर जेल हो जाती है और वोट चुराने पर एक भी व्यक्ति को जेल नहीं हुई.

—मैक्सिको के विपक्षी नेता पाब्लो मदेरो

मैं देवपुत्र और ईश्वर का संदेशवाहक हूं. जब मैं नहीं रहूंगा तो मुझे जीसस या मोहम्मद से भी अधिक सम्मान मिलेगा. वे तो केवल अपने छोटे कस्बों में जाने गये, मुझे पूरी दुनिया जानेगी.

—स्वामी सदाचारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज़रिया-नज़रिया

जो फ़जीहत आई. टी. डी. सी. की, और खासकर उसके होटलों के पड़दादा अशोक होटल की, मिलकर इतने वर्षों में पूरा हिंदुस्तान न कर पाया, उससे कई गुना ज्यादा फजीहत जुबिन मेहता के 130 कलाकारों वाले संगीत दल के चंद कलाकारों ने भारत पहुंचते ही चंद मिनटों में कर दी. लेकिन यह भी तो सच है कि जो काम देश के 70 करोड़ वासी मिलकर नहीं कर सकते उसे एक हिंदुस्तानी—जुबिन मेहता सारे संसार को करके दिखा रहे हैं. 'उनका पासपोर्ट इंडियन, उनका खान-पान इंडियन, उनकी जड़ें इंडियन. . . . . ' उनके दल के कलाकार भूल गये कि जैसे एक भारतीय कलाकार जुबिन मेहता की हैसियत बढ़ गयी है उसी तरह भारतीय तिलचट्टों की भी अपनी हैसियत पांच सितारा हो गयी है. वे अब विदेश के पांच सितारा लोगों से रूबरू होते हैं. जुबिन मेहता इस बात को समझते हैं. वे होटल छोड़कर नहीं गये. उन्हीं तिलचट्टों के बीच रहे और जब दूसरे दिन उन्होंने सीरी फोर्ट सभागार, नयी दिल्ली में बिथोवन की कंसर्टो नं. 3 की संगीत रचना भारतीय श्रोताओं के लिए प्रस्तुत की (जिसमें श्रीमती इंदिरा गांधी भी एक श्रोता थीं) तो सचमुच अपने एक युवा भारतीय पियानो वादक गैविन मार्टिन को उसका हीरो बना दिया. गैविन मार्टिन ने पियानो पर अपनी ऐसी सिद्ध-हस्तता दिखायी कि बिथोवन की संगीत रचना की मूल आत्मा, जीवन के हर्ष और उल्लास को पानी पर थिरकती हुई हंसी की तरह दिल्ली के श्रोताओं के मन पर उतार दिया. जब उन्होंने ब्रह्म सिम्फनी नं. 4 प्रस्तुत की तो लगा जैसे जीवन अपने उत्तरार्द्ध की मानसिकता की शांति और ठहरे हुए दर्द की उन्मादहीन जीवनोपयोगी परिणति के रूप में प्रस्तुत हो रहा है.

अंतराल के समय दूरदर्शन के पर्दे पर डा. नारायण मेनन जुबिन मेहता से बातचीत करते हुए दिखाई दिये. डा. नारायण मेनन अपने आप में भारतीय संस्कृति के जीते जागते अभिलेखागार हैं. उनके अनुभवों के अभिलेख भारत के सांस्कृतिक स्वरूप की रूपरेखा तैयार करने वाले संदर्भ ग्रंथ हैं. जब वे जुबिन मेहता से बात कर रहे थे तो ऐसा लग रहा था जैसे अपने अपने क्षेत्र के दो महारथी अपने पुराने दोस्ती के इंदराज अदल-बदल रहे हैं. भेंटवार्त्ताएं कैसे की जानी चाहिए, इसके लिए अगर दूरदर्शन के भेंटवार्त्ताकार डा. नारायण मेनन का अनुकरण कर लें तो दर्शकों को भाषा और विषय की हक-लाहटों से छुट्टी मिल सकती है.

शाबाश दूरदर्शन ! यह शाबाशी दो कारणों से : एक तो सीरी फोर्ट से अपने सीधे प्रसारण में जुबिन मेहता की पूरी संगीत सभा अपनी समूची जीवंतता और वैविध्य के साथ दूरदर्शन ने प्रस्तुत कर दी. कैमरा फोकसों का चुनाव और अपने अपने वाद्य पर संगीतकारों की उंगलियों को मनःस्थिति के अनुरूप पकड़ना, क्लोज और लांग शॉट में हाल के दर्शकों और संगीतकारों के बीच एक रिश्ता कायम करना सुखकर अनुभवों से गुजारता रहा. इसके लिए प्रस्तुतकर्ता अभिजित दासगुप्त एवं रीता सेठी को अनेकशः बधाई! असल में दूरदर्शन के अधिकारियों और कर्मचारियों ने जब भी अपने काम को चुनौती के रूप में लिया, वह कर दिखाया जिसे अंग्रेजी में 'ए-वन' कहते हैं. चाहे एशियाड हो या राकेश शर्मा की अंतरिक्ष यात्रा (यह अलग बात है कि घटिया कार्यक्रम दिखाने पर आते हैं तो वह घटियापन भी 'ए-वन' ही होता है), हमारा दूरदर्शन अपनी सीमित क्षमता में भी विश्व स्तर से टक्कर लेता रहा है. शाबाशी का दूसरा कारण यह कि वे जुबिन मेहता की संगीत सभा के सीधे प्रसारण की समयावधि बिना किसी पूर्व सूचना के और बिना किसी क्षमा याचना के इतनी बढ़ाते चले गये कि उसके लिए उन्हें अपने समाचार प्रसारण के समय का भी ध्यान न रहा. शायद संसार के प्रसारण इतिहास में ऐसे उदाहरण विरले ही मिलेंगे जब कोई प्रसारण संस्थान पूर्व सूचना या दर्शकों से क्षमा याचना के बिना समाचार प्रसारण के समय में भी परिवर्तन कर दे. दूरदर्शन ने यह काम भी 'ए-वन' किया. अधिकारियों का शुक्र है कि आकाशवाणी ने अभी तक ऐसी अनियमितता नहीं की.

दूरदर्शन अधिकारियों से जब पहले पूछा गया था कि 'आप इस संगीत सम्मेलन को ठीक से प्रदर्शित कर लेंगे', तो उन्होंने बड़ी साफ बात कही थी : 'सच कहें तो हमें ऐसी संगीत सभाएं दिखाने का कोई तजुर्बा नहीं है.' अब इतना तो दिल्ली दूरदर्शन ने बिना तजुर्बे के कर दिखाया. कैसा रहे अगर जुबिन मेहता हमारे दूरदर्शन को तजुर्बा देने के लिए ही सही, भारत आने में सत्रह साल न लगायें (पिछली बार वे सत्रह साल पहले लास एंजेलिस फिलहार्मोनिक लेकर आये थे) और वे दिल्ली आने का वादा करें तो हम यह वादा करते हैं अगली बार अशोक होटल में एक भी तिलचिट्टा नहीं रहने देंगे. और न सीलन की बदबू आने देंगे, चाहे हमें अशोक होटल की दीवालें खुरचवानी पड़ जायें.

•

जो लोग गाहे-बगाहे चुनाव संदर्भ में विपक्ष की एकता और श्रीमती गांधी के उसको लेकर चिंतित होने की बातें कहते रहते हैं वे उस समय आदरणीय चरण सिंह जी को भूल जाते हैं. मेरा तो यह विश्वास है कि जब तक चौधरी साहब की जान में जान है, (और इंशाअल्लाह वह अभी अच्छी खासी है) तब तक श्रीमती गांधी को अपने हितों के लिए चिंतित होने की कोई जरूरत नहीं है. वे एक बार श्रीमती गांधी की कृपा से प्रधानमंत्री हो चुके हैं. और शायद चौधरी साहब की कृपा से श्रीमती गांधी भी मियाद के दो वर्ष पहले ही पुनः प्रधानमंत्री हो चुकी हैं. चौधरी साहब ने भाजपा से अपनी मोर्चेबंदी का मजा अभी तोड़ा नहीं था कि नया जोड़ने में लग गये. जिस दिन उनकी वह नयी 'मोर्चेबाजी' हो रही थी उस दिन शाम उनके मोर्चे के दूसरे हिस्सेदार श्री अटलबिहारी वाजपेयी फोन पर हर जानकार से पूछ रहे थे कि 'पहले यह तो बताओ चौधरी साहब ने आज क्या किया?' चौधरी साहब के गुर कोई ऐसे वैसे तो हैं नहीं कि हर कोई जान लेता और बता देता अब चौधरी साहब ने नया नारा दिया : एक पार्टी, एक झंडा, एक चुनाव चिन्ह, एक घोषणा-पत्र और एक नेता, तो सभी जानते थे कि ऐसा कुछ होना नहीं है. चौधरी साहब पुराने खिलाड़ी हैं, वे भी जानते थे कि ऐसा कुछ नहीं होगा. चंद्रशेखर जी ने दूसरे ही दिन बयान दे दिया और अपनी पार्टी की ओर से श्वेतपत्र जारी करते हुए कहा कि 'विपक्ष का जो भी नेता अगला प्रधानमंत्री बनने की आशा संजोये हुए है, 'वह मूर्खों के स्वर्ग में है और किसी दिमागी गड़बड़ी से पीड़ित है.' चंद्रशेखर जी ने यह नहीं सोचा कि प्रधानमंत्री के नीचे एक उपप्रधानमंत्री पद भी हो सकता है. बहरहाल, इस समय और कुछ हो चाहे न हो, चरणसिंह जी पूरे विपक्ष को ताश की गड्डियों की तरह जब चाहते हैं तब फेंटने लगते हैं. . .

. . . और विपक्ष है कि बार बार उनसे जाकर कहता है, 'चौधरी साहब लो हम आ गये, हमें फिर फेंटो.'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रजतजयंती (15 सितंबर) पर विशेष

दूरदर्शन का स्वप्नलोक

निजात अली बेहलवी

दूरदर्शन के अधिकारी 1976 को एक बार फिर दोहरा रहे हैं—तेजी के साथ दूरदर्शन प्रसारण केंद्रों का विस्तार करके, लेकिन सवाल यह है कि इन केंद्रों से प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों को देखेगा कौन? क्या वह आदमी जिसे दो जून की रोटी भी नसीब नहीं?

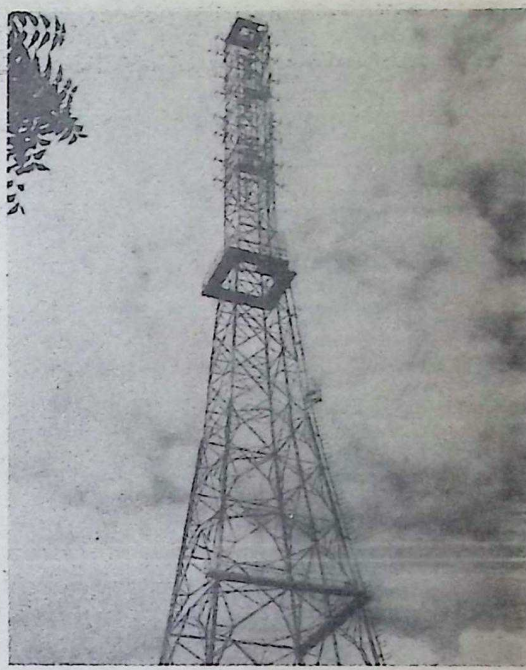

आपतकाल के दौरान श्रीमती गांधी के 20 सूत्री कार्यक्रमों तथा परिवार नियोजन जैसी महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्याओं का जितना भोंडा और खुशामदी प्रचार आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के कार्यक्रम अधिकारियों ने किया, ठीक उसी प्रकार, दुगुने उत्साह से इस बार इस विभाग के अभियंताओं का बहुत बड़ा हजूम हुकुम बजा रहा है. इसका स्पष्ट प्रमाण है बिना आगे की सोचे हुए, इतनी बड़ी संख्या में दूरदर्शन के प्रसारण केंद्रों का स्थापित किया जाना. देश में बहुत सारी महत्त्वपूर्ण योजनाएं कच्छपगति से चल रही हैं, लेकिन दूरदर्शन का कागजी विस्तार काफी तेजी से हो रहा है. जैसे 1976 में कार्यक्रम के अधिकारियों को इसके प्रभाव की व्यर्थता का बोध था, वैसे ही दूरदर्शन के अभियंताओं को इस बात की अच्छी तरह जानकारी है कि इन खंभों के खड़ा कर देने से कुछ खास होना-हवाना नहीं है.

अगर देश की भौगोलिक स्थितियों के संदर्भ में मात्र 100 वाट के प्रसारण केंद्रों की क्षमता पर दृष्टि डालें, तो यह बात ज्यादा स्पष्ट हो सकती है. पश्चिम राजस्थान के जिलों में, जहां की जनसंख्या अत्यंत ही विरल है, लघु क्षमता के प्रसारण खंभों से अपेक्षित जनसंख्या को प्रभावित नहीं किया जा सकता. बेशक 200 वर्ग मील तक कार्यक्रम देखे जा सकते हैं, लेकिन देखने वाला कोई नहीं होगा! चुनाव की संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार ग्रामीण क्षेत्रों में खासकर पंचायतघरों में, मुफ्त टी.वी. सेट मुहैया करने की योजना तेजी से अमल में ला रही है. लेकिन सिर्फ सेट बांट देने भर से जिम्मेदारी खत्म नहीं हो जाती. उसके रख-रखाव और सही ढंग से चलाते रहने की भी आवश्यकता होती है. टी.वी. जैसे नाजुक उपकरणों की नजाकत को देखते हुए यह पूछा जा सकता है कि क्या राज्य सरकार एक साथ हजारों टी.वी. सेटों की देखभाल कर सकेगी? यदि नहीं तो सरकारी पैसों का इस तरह से दुरुपयोग न करना ही बेहतर होगा. इसके पहले भी उपग्रह केंद्र के कार्यक्रमों को देखने के लिए पंचायतों एवं स्कूलों में सैकड़ों टी.वी. सेट वितरित किये गये थे. लेकिन प्राप्त सूचनाओं से यह साबित हुआ है कि सभी टी.वी. सेट का एक साथ सुचारु रूप से कार्यरत रहना असंभव है.

बिहार या मध्यप्रदेश या कहीं भी, जहां राज्य सरकारें ऐसे सार्वजनिक स्थानों पर टी.वी. सेट मुहैया कर रही हैं, यही स्थिति होगी. फिर इसकी भी क्या गारंटी है कि रोटी के लिए जूझते या तन मन से गरीब देश में लोग भूखे प्यासे रह कर, कीमतों की कमी के बावजूद टी.वी. खरीदने दौड़े आयें. अगले कई दशकों तक टी.वी. उन्हीं के घरों की प्रतिष्ठा का प्रतीक बना रह सकता है, जिनके पास संचार के अन्य साधन भी हैं.

इन खंभों की अनुपयोगिता को सिद्ध करने में बिजली की तंगी सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है. पूरे देश में बिजली उत्पादन की क्षमता और अधिक बढ़ाने की जरूरत है. खासकर बिहार और पश्चिम बंगाल भयंकर रूप से अभाव-ग्रस्त हैं. उत्तर बिहार के कई जिलों की कई लघु उद्योग और उद्योग की अन्य छोटी छोटी इकाइयां बिजली के अभाव में बंद हो गयी हैं. छोटे छोटे शहरों, मोतिहारी, दरभंगा, सीतामढ़ी इत्यादि जिलों का नागरिक जीवन अस्त-व्यस्त है. एक सर्वेक्षण के अनुसार, मुजफ्फरपुर, जहां पिछले कई सालों से दूरदर्शन का खंभा खड़ा है, बिजली के अभाव में अपने कार्यक्रम जनरेटर की सहायता से प्रसारित कर रहा है और देखने वाला, अंधेरे में डूबा हुआ है. जब बिहार के बड़े शहरों की ऐसी दर्दनाक स्थिति है तो छोटे शहरों की क्या हालत होगी?

पश्चिम बंगाल में भी बिजली के उत्पादन का मामला कुछ इसी तरह का है. इसलिए जब तक बिजली के उत्पादन की स्थिति ठीक नहीं होगी, लोग दूरदर्शन को भी देख नहीं सकेंगे.

दूरदर्शन के वास्तविक प्रचार प्रसार के सपनों को तोड़ने वाला एक और बड़ा रोड़ा है, प्रसारण केंद्रों में तकनीकी उपकरणों की सही ढंग से देखभाल. यह एक हास्यास्पद पहलू है. दूरदर्शन एवं रेडियो के अभियंताओं का तबादला, एक से दूसरे विभाग में बड़ी आसानी से हो जाता है. हद से हद वरीयता भी दोनों विभाग के अभियंताओं की संख्या और कार्यावधि मिलाकर ही तय की जाती है. इसलिए बड़ी आसानी से रेडियो का अभियंता रातों-रात दूरदर्शन के प्रसारण केंद्र का अभियंता बन बैठता है, जबकि रेडियो और दूरदर्शन की तकनीक में जमीन आसमान का अंतर है. इसलिए इन उपकरणों के रखरखाव की शैली पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है. देश के अधिकतर प्रसारण केंद्रों की क्षमता 100 वाट से घट कर 80 या 70 वाट हो गयी है. इसकी वजह से प्रसारण क्षेत्र की सीमाओं में भी कमी आयी है. इसलिए जब तक दूरदर्शन और आकाशवाणी के अंदर की अदला-बदली बंद नहीं होगी, इन उपकरणों की कार्यक्षमता को हमेशा खतरा बना रहेगा. इन उपकरणों में गड़बड़ी होते ही उन दर्शकों के मिजाज का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गड़बड़ा जाना भी स्वाभाविक है, जिन्होंने हजारों रु. टी.वी. खरीदने पर खर्च किये हैं.

इन प्रसारण केंद्रों के साथ किसी आपात-स्थिति में स्थानीय कार्यक्रमों के प्रसारण की सुविधा न देकर दर्शकों के लिए अजीब मानसिक चिंता का विषय दे दिया गया है. जैसा कि विगत 9 अगस्त 1984 की रात को हुआ. इनसैट-बी से तमाम केंद्रों का, जो एस. बैंड पर कार्यक्रम प्राप्त कर रहे थे, खराबी आ जाने के कारण सीधा संपर्क टूट गया. नतीजतन दो दिनों तक सभी वे टी.वी. सेट बेकार पड़े रहे जो लघुक्षमता वाले प्रसारण केंद्रों से जुड़े हुए थे, अगर दुर्भाग्यवश फिर कभी कुछ हुआ तो, दूसरे उपाय करने तक, दूरदर्शन के पास अविलंब कोई रास्ता नहीं है, क्योंकि स्थानीय कार्यक्रमों के निर्माण की कहीं कोई व्यवस्था ही नहीं है.

नयी व्यवस्था की बात यदि हम जाने भी दें तो कार्यरत पुराने स्टूडियो के उपकरणों को ऑक्सीजन दे देकर किसी तरह जीवित रखा जा रहा है. इसका उदाहरण दिल्ली स्थित उपग्रह केंद्र है. यह दूरदर्शन की करुणाजनक विडंबना है कि जो मशीनें पहले से ही संभल नहीं रही हैं, उन पर इतने बड़े मशीनी विस्तार का बोझ लादा जा रहा है. जिन कलाकारों को भी उपग्रह दूरदर्शन में कार्यक्रम देने का मौका मिला होगा वे मेरी इस बात से पूरी तरह सहमत होंगे कि वह केंद्र अव्यवस्थित है, जबकि ठीक निदेशालय की नाक के नीचे है. जी हुजूरी और अफसरशाही का आलम यह है कि कोई किसी के सामने सच्ची बात कह नहीं सकता. मगर कोई उपकरण, रिकार्डिंग मशीन हो या कैमरा, खराब होने की बात अभियंता स्वीकार नहीं करना चाहते. किसी भी बात की शिकायत करने की बजाय उसे अपने सम्मान का मुद्दा बना कर कागजों पर सब कुछ ठीक दिखा देते हैं. नतीजा होता है कि कार्यक्रम रिकार्ड होते समय अचानक खराबियां पैदा हो जाती हैं. इसीलिए तकनीकी दृष्टि से निम्न स्तर के कार्यक्रम तैयार किये जाते हैं. कभी कभी तो ऐसा भी देखने में आता है कि कुछ खराबी होने पर इंजीनियर आकर कैमरे को जोर से एक दो चपत लगा देते हैं, और वह फिर काम करने लगता है. यह कोई मजाक नहीं एक तथ्य है.

इसलिए यह शंका उठना स्वाभाविक है कि जो अभियंता स्टूडियो के तकनीकी उपकरणों की खस्ता हालत से चिंतित नहीं हैं, उनसे इतना बड़ा इलेक्ट्रानिक्स का फैलता हुआ महाजाल संभल जायेगा, इसकी संभावनायें बहुत कम हैं. इस प्रसारण की राजनीति के तहत कई सौ नये अभियंताओं की बहालियां होंगी, कई अभियंताओं को प्रोन्नति मिलेगी और दूरदर्शन अपने अभियंताओं के प्रभाव से महिमा मंडित हो जायेगा. और फिर इसकी

यह दूरदर्शन की करुणाजनक विडंबना है कि जो मशीनें पहले से ही संभल नहीं रही हैं, उन पर इतने बड़े मशीनी विस्तार का बोझ लादा जा रहा है.

वजह से किसी वरिष्ठ अभियंता को महा-निदेशक बनाने की मांग होगी, लेकिन दर्शकों का क्या होगा? वे कब तक स्थानीय कार्यक्रमों के अभाव में लूसी, सड़ीगली व्यापारी फिल्मों का स्ट्रोक सहते रहेंगे? दिल्ली के कृषिदर्शन को जब मिन्न मिट्टी और जलवायु के दर्शक, देख कर टी.वी. को आदर्श मानते हुए खेती करने लग जायेंगे तो सिवाय धरती की कोख को बांझ कहने के और क्या कर सकेंगे?

प्रसारण केंद्रों का सिलसिला तो अब शुरू हुआ है यदि दूरदर्शन के अधिकारियों से पिछले कई सालों से कार्यरत रायपुर, संभलपुर, जयपुर एवं मुजफ्फरपुर रिले केंद्रों की उपलब्धियों की जानकारी ली जाये तो वे निश्चित रूप से फाइलों के समुद्र से कुछ अनमोल मोती आंकड़ों के रूप में निकाल लेंगे और पूछने वाले को निरुत्तर कर देंगे. लेकिन सच्चाई पर नितांत विभागीय गोपनीयता की मुहर लगा कर, अपने उच्च अधिकारियों को भी, सही जानकारी नहीं देंगे. इसलिए लीपापोती एवं 'बचो और बचाओ' की संस्कृति में यह कहना कठिन है कि किस जिले का खंभा सुचारु रूप से कार्यक्रम का प्रसारण कर रहा है या कितने जिलों के दर्शक टी.वी. सेट को रोज अगरबत्तियां दिखाकर, सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय को कोस रहे होंगे.

जिन्हें यह आशंका है कि चुनाव के संदर्भ में दूरदर्शन का खुलकर उपयोग किया जायेगा उनकी चिंता सही नहीं लगती. सर्वप्रथम यह भारत है, अमेरिका नहीं. यहां चुनाव टी.वी. के बल पर नहीं बूथ छापने की ताकत पर जीता जाता है. दूसरे, जो टी.वी. के दर्शक हैं उनमें से अधिसंख्य वोट देने नहीं जाते हैं क्योंकि उनके वोट 'बोगस' बन कर गिर चुके होते हैं. तीसरा, जब तक रेडियो और दूरदर्शन पर सरकारी तंत्र में जकड़े होने की स्थिति का आभास लोगों को होता रहेगा, उसकी

बचो और बचाओ की संस्कृति में यह कहना कठिन है कि किस जिले का खंभा सुचारु रूप से कार्यक्रम का प्रसारण कर रहा है या कितने जिलों के दर्शक टी वी सेट को अगरबत्तियां दिखाकर सूचना और प्रसारण मंत्रालय को कोस रहे होंगे.

विश्वसनीयता खंडित रहेगी और जिस वस्तु या व्यक्ति या मीडिया की विश्वसनीयता नहीं रहती या किसी वजह से उसकी साख गिर जाती है तो उसकी सामाजिक उपयोगिता भी नष्ट हो जाती है. खास कर, जब तक मीडिया सरकारी है और शैलियां पुरानी हैं, दूरदर्शन से कभी इस देश में क्रांति नहीं आने वाली है.

यह एक विचित्र नियति है कि इस देश में सरकार जिन निगमों या संस्थाओं को, मुनाफा कमाने के लिए संरक्षण प्रदान करती है, उनमें घाटे का जोखिम उठाना पड़ता है और आकाशवाणी एवं दूरदर्शन जैसी संस्थाएं जो देश की सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना के विकास एवं जन जागरण में विशिष्ट भूमिका निभाती हैं, सरकार को हर साल करोड़ों का मुनाफा कमा कर देती हैं. दूसरी ओर इनके कर्मचारियों के वेतनमान से लेकर रहन सहन की स्थिति रुग्ण हैं. चूंकि इस देश में कुछ भी संभव है इसलिए यह चौंकाने वाली बात नहीं है. इसकी रुग्णता के बारे में यदि गहरे सोचें तो कई स्तरों पर कटु सच्चाइयों का सामना करना पड़ेगा. इस रुग्णता की कई वजहें हैं. उनमें से एक है संगठन का अभाव. संगठन का अभाव इसलिए है कि भारत सरकार का सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ही एक ऐसा विभाग है जिसके माध्यम से राजनैतिक एहसान चुकाये जा सकते हैं. कोई बड़ी पैरवी ले कर आने वाला व्यक्ति अत्यंत सहजता से, कुछ दिनों तक अस्थायी पद पर काम करने लगता है, फिर अचानक वह एक नयी सुबह प्रोड्यूसर के पद पर विभूषित हो जाता है. चूंकि ये पद विशेष प्रतिभावान कलाकारों या संगीतकारों के लिए हैं, इसलिए ता-उम्र ठेके पर काम करने की पूरी व्यवस्था है. इसी वजह से इसकी बहालियों में जो भागदौड़ होती है उसका जलवा ही कुछ और होता है.

चूंकि पैरवी या पिछले दरवाजे से आने वाले कलाकारों की आत्मा में वह दम नहीं होता, इसलिए यहीं से रुग्णता भरनी शुरू हो जाती है. उनके लिए अफसरों की चमचागीरी के अलावा कोई रास्ता नजर नहीं आता, जिसकी आड़ में अयोग्यता ढंकी रहती है. इसलिए संगठन का नेतृत्व नहीं हो पाता. फिर ठेके की नौकरी पर काम करने वाला मजदूर मालिक से डर कर नहीं रहेगा तो क्या करेगा? इस सूत्र को यदि पूरे दूरदर्शन की व्यवस्था पर चस्पां करके देखा जाये तो बातें और ज्यादा स्पष्ट हो सकती हैं.

दूसरी विचित्र नियति यह है इसके स्टाफ आर्टिस्ट (ठेके पर बहाल किये जाने वाले कर्मचारियों को स्टाफ आर्टिस्ट के पद से सम्मानित किया जाता है) प्रधानमंत्री के 20 सूत्री कार्यक्रम के तहत बंधुआ मजदूरी प्रथा के खिलाफ काफी जोरशोर से कार्यक्रम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूरदर्शन के विस्तार के सिलसिले में प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी ने वाराणसी में प्रसारण केंद्र का उद्घाटन किया (26 अगस्त). उनके साथ हैं मुख्यमंत्री नारायण दत्त तिवारी (दायें से दूसरे) और पंडित कमलापति त्रिपाठी (दायें से तीसरे)

बनाते हैं, लेकिन उनकी खुद की स्थिति बंधुआ मजदूरों से भी बदतर होती है. इस विभाग के एक चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी की जितनी ताकत है, उतनी किसी वरिष्ठ कलाकार के पास भी नहीं होती, क्योंकि चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी अन्य केंद्रीय कर्मचारियों की तरह स्थायी होता है और 'स्टाफ आर्टिस्ट' कहा जाने वाला जीव अस्थायी. मानसिक रूप से यह विभाजन पूरे विभाग की कार्यप्रणाली पर प्रभाव डालता है.

असल में दूरदर्शन का यह माध्यम किसी सरकारी अफसर की समझ में नहीं आया है. इसलिए तीसरी विचित्र बात हुई कि पिछले साल इस मंत्रालय ने सभी पदों को स्थायी, किंतु जो असली कलाकार हैं, जैसे वादक, संगीतज्ञ, वाचक, उद्घोषक इत्यादि उन्हें न सिर्फ अस्थायी करार दिया बल्कि ठेके की अवधि 58 साल से घटा कर 5 साल कर दी. इस नीति के विरुद्ध मामला सर्वोच्च न्यायालय में ले जाया गया है. इन कलाकारों पर सरकारी जुल्म की इंतिहा यह है कि एक ही विभाग के तकनीकी एवं प्रशासन की दो शाखाओं के 'ओवर टाइम' का भुगतान स्थानीय अफसर के द्वारा महीने भर में हो जाता है जब कि कलाकारों के ओवरटाइम की मजदूरी के भुगतान के लिए निदेशालय की स्वीकृति की जरूरत होती है. परिणामस्वरूप भुगतान में सालों लग जाते हैं. इनमें काम करने का उत्साह आये तो कहां से आये?

प्रस्तुतकर्त्ता के अनुबंध में यह स्पष्ट लिखा होता है कि उन्हें भारत के किसी भी केंद्र पर स्थानांतरित किया जा सकता है लेकिन ऐसा कभी नहीं होता. दिल्ली के प्रस्तुतकर्ता अनादिकाल से जमे हैं और जिनका तबादला करने की ताकत अभी तक किसी भी महानिदेशक में नहीं हुई. दिल्ली में रहने की खास ललक ने इस महानिदेशालय में 'पद के साथ तबादले' की नयी संस्कृति को जन्म दिया है. दिल्ली दूरदर्शन केंद्र में रिक्तियों के अभाव में, दूसरे कई केंद्रों से पद सहित ही तबादला करवाया गया है. इनमें से कुछ प्रस्तुतकर्त्ताओं को तो दूरदर्शन महानिदेशालय में बैठने की व्यवस्था कर दी गयी है और कुछ दूरदर्शन के लिए कार्यक्रम तैयार करते हैं. जो प्रस्तुतकर्त्ता, किसी दूसरे केंद्र के लिए भेजे जाते हैं, वे किसी न किसी तरह फिर दिल्ली वापस आ जाते हैं. इसका परिणाम भुगतना पड़ता है उन कलाकारों को जो स्वाभिमानी हैं और जिनकी संख्या नगण्य है. तब यह समझ में आता है कि दूरदर्शन में नौकरी के लिए नौकरी करने दी जाती है या किसी खास कारणवश?

पिछले सालों से जब से विभागीय प्रोन्नति के मार्ग खुले हैं, यह कहने में संकोच नहीं है कि गुणात्मक रूप से दूरदर्शन की गरिमा बढ़ी नहीं है. प्रस्तुतकर्त्ताओं के लिए फिल्म टी.वी. शिक्षण संस्थान, पुणे या मद्रास या राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से डिप्लोमा की मांग की जाती है, लेकिन यहां कितने प्रस्तुतकर्त्ता रचनात्मक स्तर पर खरे उतरेंगे, यह कहना कठिन है, क्योंकि देखा जाये तो इस पद का कलात्मक एवं रचनात्मक पक्ष ज्यादा महत्त्वपूर्ण है. इसे दफ्तर के क्लर्कों की तरह प्रोन्नति करके नहीं भरा जा सकता. फिर सरकार के पास इस कलात्मकता को नापने के लिए 'जी हुजूरी' की कसौटी है. 'जी हुजूरी' की यह मिठास अफसर को तात्कालिक खुशी तो दे जाती है, लेकिन कालांतर में इसका गुणात्मक प्रभाव इसके कार्यक्रमों पर पड़ता है. इसके अलावा रेडियो के प्रभाव ने भी दूरदर्शन की कल्पनाशीलता को कुंद कर दिया है, क्योंकि तकनीकी एवं प्रशासन विभागों में रेडियो और दूरदर्शन के अफसरों का आदान-प्रदान अभी तक जारी है. जब अचानक रेडियो का निदेशक, दूरदर्शन निदेशक के रूप में गद्दी को संभालने लग जाये तो उससे कल्पनाशीलता की आशा करना व्यर्थ है!

अगर दूरदर्शन में राजनैतिक बहालियां और थोक भाव से प्रोन्नति की रोकथाम न की जाये तो अगले आठ-दस वर्षों में इसकी रही सही गुणात्मकता में ह्रास निश्चित है. विडंबनाओं से भरे इस देश की यह घोर विडंबना है कि जिनके पास उंगलियां नहीं हैं, उन्हें भी तबला बजाने के लिए नियुक्त कर लिया जाता है. क्या इस विभाग में कोई ऐसा संवेदनशील अधिकारी नहीं है जो सोच सके कि दूरदर्शन पर हो रहे खर्च की राशि गरीब जनता की है और देश की अमानत है. कोई व्यक्ति या प्रस्तुतकर्त्ता देश से बड़ा नहीं है. जोशी समिति की रिपोर्ट के अनुसार जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की तरह दूरदर्शन को छह महीने बंद करके, पूरी तरह झाड़ पोंछ कर और कुशल कलाकारों एवं जानकार तकनीशियनों को लेकर नये सिरे से कार्यक्रम शुरू करना चाहिए. यदि मौजूदा स्थिति ही बनी रही तो पच्चीस क्या अगले पचास सालों तक इसमें सुधार की कोई संभावना नहीं है.

इनकी वर्त्तमान अकुशल व्यवस्था का सबसे अच्छा उदाहरण यह है कि कैमरामैन, फिल्म संपादक जैसे तमाम पद खाली हैं और कोई डिप्लोमाधारी, वेतन कम होने की वजह से, आना नहीं चाहता. नतीजा यह है कि तमाम केंद्रों पर किसी न किसी तरह काम चलाया जा रहा है. पूरे दूरदर्शन की शासन व्यवस्था इतनी असंतुलित है कि दिल्ली में उच्च अधिकारियों एवं राजनैतिक पैरवी के बल पर लगभग बीसियों प्रस्तुतकर्त्ता किसी न किसी बहाने दिल्ली में रह कर तनख्वाह ले रहे हैं, लेकिन जयपुर दूरदर्शन केंद्र में महीनों से प्रस्तुतकर्त्ता का एक पद रिक्त है. इस सच्चाई का पता छोटे से बड़े हरेक अधिकारी को है. इस प्रकार यदि अधिकारी दूरदर्शन को वही महत्व देंगे जो दूसरे केंद्रीय दफ्तरों को दिया जाता है तो, सूसी और आयातित टी. वी. कार्यक्रमों की संख्या बढ़ती रहेगी जो इस देश की स्थानीय कलात्मक संस्कृति को नेस्तनाबूद कर देगी. समय बहुमूल्य है. दूरदर्शन अधिकारियों को डिफरेंट स्ट्रोक्स, बारवा पापा जैसे कार्यक्रमों को दिखला कर दर्शकों के लाखों घंटे बर्बाद नहीं करने चाहिए. ■

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कैमरे के सामने जाना तोपखाने का सामना करने के बराबर है

दूरदर्शन की सुप्रसिद्ध समाचार वाचिका सलमा सुलतान से सुषमा जगमोहन की बातचीत

सलमा सुलतान : 'मजा आता है बदलते रहने में'

मैंने जिस समय उनके घर की घंटी बजायी गुलाम अली की गजल बाहर तक सुनाई दे रही थी. दरवाजा स्वयं उन्होंने ही खोला था—सलमा सुलतान ने.

वे बसंती रंग का कुर्ता पायजामा पहने हुए थी. पहली बार उन्हें साड़ी के अलावा किसी और परिधान में देखा. दूरदर्शन के समाचारों ने उनकी जो पहचान बनायी—जरी की साड़ी, बालों में गुथा हुआ गजरा और माथे पर बिंदिया. दूरदर्शन की बहुत सी उद्घोषिकाएं उनकी जिस शैली की नकल करने लगी हैं—वह सब कुछ गायब था.

बड़े सरकारी अधिकारियों और मंत्रियों की आलीशान बस्ती पंडारा रोड में है उनका भव्य फ्लैट. कुछ कुछ मुगलों के जमाने की याद दिलाती है उस घर की सजावट. घर का फर्नीचर, खाने की मेज के पास एक अलमारी में रखी हुई थोड़ी सी किताबें—कुछ ताजमहल और शायद मुगल इतिहास पर, और कैसेट ज्यादातर गजलों के. नयों में गुलाम अली, पुरानों में बेगम अख्तर ज्यादा पसंद हैं उन्हें. खासी दिलचस्पी है सलमा सुलतान की इन चीजों में. पर उन्हें बदलते रहना पसंद है. 'घर को सजाओ संवारो, फिर सजाओ, किसी दूसरे ढंग से. मजा आता है बदलते रहने में.'

इस खूबसूरत फ्लैट के बारे में लोगों का कहना है कि अपने राजनैतिक रिश्तों की वजह से इतना बड़ा फ्लैट उन्हें मिला है. वे हैरान थीं इस बात पर. कहने लगीं, 'मैं दूरदर्शन में लगभग 18 साल से हूं. क्या मैं सरकारी अधिकारी के बराबर भी नहीं हूं.'

सलमा जी पिछले पंद्रह सोलह साल से दिल्ली दूरदर्शन से खबरें सुना रही हैं. प्रतिमा पुरी के बाद सलमा सुलतान का नाम ही ऐसा है जो दूरदर्शन समाचारों से पूरी तरह न केवल जुड़ गया है बल्कि दूरदर्शन समाचार और सलमा सुलतान कहां एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं पता ही नहीं चलता. हां, यह अलग बात है कि कुछ हिंदी विद्वान उनकी हिंदी समाचार पढ़ने की शैली देखकर अभी भी कह दें कि सलमा सुलतान अंग्रेजी शैली में हिंदी बोलना आखिर कब छोड़ेंगी.

सलमा सुलतान सन '67 में भोपाल से दिल्ली आयी थीं. अपनी बहन संसद सदस्या मोहसिना सुलतान के पास. यहीं इंद्रप्रस्थ कालेज से एम. ए. करने का निश्चय किया. नाटकों में शुरू से ही दिलचस्पी रही. यहां दूरदर्शन शुरू हो ही चुका था. शाम के वक्त वहां एनाउंसमेंट करना शुरू कर दिया. 'अच्छा लगता था. सब शौकिया ही किया. बिना शौक के मैं कुछ कर ही नहीं सकती.' उन्होंने कहा.

'समाचार भी इसीलिए पढ़ती हूं कि अच्छे लगते हैं', वे आगे बोलीं, 'मेरा समाचारों में आना भी एक इत्तिफाक ही है.'

'उन दिनों दूरदर्शन पर समाचार रोज नहीं आते थे. प्रतिमा पुरी ही समाचार पढ़ा करती थीं. एक दिन वे छुट्टी पर थीं. मुझसे कहा गया कि आज के समाचार मुझे पढ़ने हैं. मैंने सुना तो एक बार घबरा ही गयी. घोषणाएं करने में और खबर पढ़ने में जमीन आसमान का फर्क है. घोषणा हद से हद एक मिनट की होगी, समाचार 15 मिनट के. 15 मिनट तक आपको लगातार कैमरे के सामने रहना होता है. फिर यह तकनीकी चीज है. बहुत सारे तालमेल बिठाने होते हैं. . .'

वे बता रही थीं, 'समाचार पढ़ते हुए खबरें भी दिखायी जाती हैं. स्क्रिप्ट में परिवर्तन होता चला जाता है. खबरें लगातार आती जाती हैं. पहले दिन बहुत कोशिश की कि मुस्कुराकर अपनी घबराहट को छिपाऊं, पर एक दो दिन खबरें पढ़ीं तो लोगों ने सराहा. हिचक भी खुल गयी थी. बस फिर पढ़ना शुरू कर दिया.'

और उनकी यह यात्रा तब से आज तक जारी है. सिर्फ एक पड़ाव के साथ, जब 1978 में दसेक साल खबरें पढ़ने के बाद अचानक यह कहा गया कि सलमा सुलतान को तो खबरें पढ़नी ही नहीं आतीं और उन्हें एक बार फिर घोषणाएं करने के लिए कहा गया.

जिसका तीन साल तक उन्होंने विरोध किया—एक भी एनाउंसमेंट न करके. नौबत यहां तक आ गयी थी कि 'शायद नौकरी से ही हाथ धोना पड़े. तब ही अचानक मुझे समाचारों में वापस लेने का फैसला किया गया.'

और आज उन समाचारों की बदौलत ही सलमा सुलतान 'स्टार' हैं. 'स्टार' होने के कई नुकसान भी हैं, कई फायदे भी. एक ओर लोग 'बाटिक' का उद्घाटन करवाने के लिए निमंत्रित करते हैं. सलमा कभी समाचार पढ़ने के लिए गजरा लगाकर नहीं आयीं या बिंदी नहीं लगायी तो चर्चा का विषय बन गया. या किसी शुभचिंतक ने समाचार पढ़ते हुए महसूस कर लिया कि सलमा सुलतान को आज जुकाम है, तो तीसरे दिन खत पहुंच जायेगा, उनकी सेहत के बारे में हिदायतों सहित. कहीं किसी रोज कोई गलती हो जाये तो लोग प्यार से समझाते हुए चिट्ठी लिख देंगे. पर सलमा जी को सब अच्छा लगता है.

यहां तक भी गनीमत रहती है. जब उनके 'मिस यू. एन. . .' चुने जाने पर, जिसका किसी भी तरह की सौंदर्य प्रतियोगिता से कोई संबंध नहीं है, लोग कह देते हैं कि सलमा मिस शिमला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चुनी गयी थीं और मिस इंडिया बनते बनते रह गयीं. मुश्किल तब आती है जब कहा जाता है कि सलमा सुलतान का अपने शौहर से तलाक हो गया है. और भी बहुत कुछ जो 'स्टार' बनने के साथ साथ चस्पां हो जाता है. खासकर औरत हो तो और भी.

सलमा इन सब तरह की बातों को हंस कर उड़ा देती हैं. न ही इन बातों का उनकी निजी जिंदगी पर कोई असर पड़ता है. मैं पूछने लगी तो वे हंस पड़ी थीं. बोलीं, 'बहुत डर डर कर पूछ रही हैं. लगता है काफी कुछ सुनकर आयी हैं मेरे बारे में.' इत्तिफाक से उनके शौहर आमिर किदवई उस दिन घर पर ही थे, बीमार थे. बोलीं, 'पर मिलवाऊंगी नहीं. क्या फायदा, आप हम दोनों का फोटो भी साथ साथ छाप देंगी तो भी लोग सच नहीं मानेंगे. कितना ही लिख दीजिए. लोग यही कहेंगे कि सलमा झूठ बोल रही हैं.'

मैंने सलमा जी से पूछा:

☐ दूरदर्शन पर समाचार पढ़ने के लिए या घोषणाओं के लिए किसी भी आदमी में या स्त्री में क्या खूबियां देखी जाती हैं—सिर्फ खूबसूरती या अंदाजेबयां या कुल व्यक्तित्व?

टी.वी. वाले जो पसंद करते हैं, टी.वी. पर आ जाता है. ये लोगों से पूछिए, वे क्या देखना चाहते हैं. क्या वे खूबसूरत चेहरे नहीं देखना चाहते?

☐ आपके खयाल से सिर्फ एक खूबसूरत चेहरा परदे पर दिखाने से काम चल जाता है?

नहीं, आवाज का अच्छा होना, दूसरी बातों की जानकारी होना भी बहुत जरूरी है. पर रेडियो और टी.वी. में बहुत फर्क है. रेडियो में किसी खूबसूरत स्त्री को समाचार पढ़ने के लिए बिठा दीजिए. अगर आवाज ढंग की नहीं है तो बेकार है. लेकिन दूरदर्शन में आकर्षक व्यक्तित्व का होना कम से कम बहुत जरूरी है.

☐ लेकिन कभी कभी तो दूरदर्शन देखते हुए ऐसा लगता है कि उद्घोषक में इनमें से कोई भी सी खूबी नहीं है. न आकर्षक व्यक्तित्व, न अच्छी आवाज.

तो आप लोगों ने इसके खिलाफ कभी कुछ लिखा क्यों नहीं.

☐ क्या लिख देने से ही सब कुछ हो जाता है. दूरदर्शन वालों का फर्ज कुछ नहीं?

वे तो अपनी ओर से सही सोच कर ही करते होंगे. लोगों को लगता है उनका चयन ठीक नहीं है, विरोध करें.

☐ कभी कभी ऐसा लगता है कि दूरदर्शन पर जो व्यक्ति घोषणा कर रहा है, उसे सीधे घर से लाकर यहां बिठा दिया गया है. क्या किसी तरह का प्रशिक्षण दूरदर्शन कलाकारों को नहीं दिया जाता?

प्रशिक्षण शायद कभी दिया भी नहीं जायेगा. दूरदर्शन वाले सोचते हैं कि समाचार पढ़ने वाले या उद्घोषक अल्लामियां की तरफ से खासतौर पर बनाये जाते हैं. अभी कुछ दिन पहले एक लड़की को सीधे एनाउंसमेंट करने के लिए भेज दिया गया. बेचारी एकदम घबरायी हुई थी. बेहोश होने ही वाली थी. आखिर कैमरे के सामने जाना इतना आसान तो नहीं. तोपखाने के सामने जाने के बराबर ही है कैमरे के सामने जाना. पूरे नाड़ीतंत्र को हिला कर रख देता है.

☐ तब प्रशिक्षण की व्यवस्था क्यों नहीं?

यह तो अधिकारियों से पूछिए.

☐ अब दूरदर्शन में कलाकारों को कांट्रैक्ट के आधार पर रखा जाता है. पुराने लोग कुछ ही स्थायी हैं, बाकी सब अस्थायी. ऐसा क्या सोचकर किया गया है?

हां मैं, मीनू तलवार और एक दो कलाकार ही स्थायी हैं. वह इसलिए कि दूरदर्शन पर हर रोज नये चेहरे चाहिए. जब तक कोई परदे पर आने के लायक है ठीक है, नहीं तो छुट्टी.

☐ जो लोग स्थायी हैं, वे परदे पर आने लायक नहीं रहते तब?

बहुत सारे काम हैं दूसरे, जो परदे पर आये बिना किये जा सकते हैं. वे कहते रहेंगे.

☐ क्या कांट्रैक्ट के आधार पर कलाकारों को रखने से शोषण की प्रवृत्ति नहीं बढ़ेगी?

मैं नहीं सोचती कि ऐसा है. जो लोग टी.वी. पर काम करते हैं, वे कहीं न कहीं नौकरी कर रहे होते हैं. कोई प्रोफेसर है, कोई लेक्चरर है, कोई विज्ञानी है. कोई दफ्तर में काम करता है. क्या उनका शोषण कोई कर सकता है.

☐ दूरदर्शन ऐसा माध्यम है, जो परदे पर आने वाले लोगों को 'स्टार' की छवि और लोकप्रियता देता है. क्या यही कारण काफी नहीं है.

दूरदर्शन के स्टार के लिए दिक्कतें ज्यादा हैं. लोग एक स्टार से जिस तरह की उम्मीद रखते हैं, उसे निबाहना मुश्किल हो जाता है. एक बुलेटिन के 150 रुपये मिलते हैं या अंदाजन 2000 रुपये महीना और भत्ते. इसमें दूरदर्शन पर आने के लिए नयी साड़ियां खरीदिए. अगर कोई पैसे वाले घर का है तो ठीक. नहीं तो इतने सब ग्लैमर का इंतजाम कहां से हो सकता है. कोई घर आ जाये तो और भी मुश्किल. वह सोचता होगा ये ऐसे रहते होंगे, वैसे रहते होंगे.

☐ लेकिन आज फिल्म अभिनेता, अभिनेत्रियां भी इस तरह की छवि की परवाह नहीं करते. स्मिता पाटील अंतरराष्ट्रीय ख्याति पाने के बावजूद अपने उसी पुराने फ्लैट में रहती हैं.

वह भी एक नयी तरह की छवि बनाने के लिए.

☐ पर क्या यह एक सुखद आश्चर्य नहीं देता कि स्टार भी हमारे जैसे ही हम में से ही एक हैं.

हां, पर जो इस तरह की छवि बनाने को मजबूर हो, उससे पूछिए.

☐ दूरदर्शन के बारे में इस तरह की छवि क्यों बन गयी है कि वहां भ्रष्टाचार बहुत है. बिना मंत्री की सिफारिश के कोई कलाकार वहां नहीं टिक सकता और यह कि लड़कियों के लिए तो. . .?

माफ़ कीजिए, आज तो एक चपरासी भी मंत्री को जानता है फिर कलाकारों की बात तो दूर है. दूरदर्शन केंद्र में कोई भेड़िए तो बैठे नहीं हैं, जो बस खा ही जायेंगे.

☐ दूरदर्शन की ऐसी छवि कहीं फिल्मों के कारण तो नहीं बन गयी?

फिल्मों की बात अलग है. वहां जबरदस्त प्रतियोगिता है व्यवसायीकरण है हर चीज का. लेकिन यह तो सरकारी दफ्तर है.

☐ लेकिन प्रतियोगिता तो यहां भी है. परदे पर आने की?

पर वह ठीक वैसी ही है जैसी दूसरे सरकारी दफ्तरों में होती है.

लौटते हुए मुझे एक दूरदर्शन कलाकार से हुई बात याद आ रही थी, जब उन्होंने बताया था कि कैमरे के सामने आने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों को हथियाने के लिए किस किस तरह की राजनीति दूरदर्शन केंद्र में चलती है और दूरदर्शन पर बिना वजह नये प्रयोग के नाम पर कत्थक नृत्य के कार्यक्रम की घोषणा करती लहंगा ओढ़नी पहन कर जेवरों से लदी फंदी उद्घोषिकाओं की सूरतें ध्यान में आ रही थीं. जो कभी कभी गहनों के बोझ से दबकर अपनी घोषणा भी सही ढंग से कहना भूल जाती हैं.

और दर्शक बेचारा. खिल्ली क्या उड़ायेगा दूरदर्शन वालों की, कभी उनकी सूझ पर तरस खाता है तो कभी गंभीर समाचारों के बीच में ही साड़ियों और बालों के स्टाइल की चर्चा छिड़ जाती है और [illegible] कौन सुनता है.

सलमा अपनी पुत्री के साथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आखिर ये कार्यक्रम किसके लिए हैं?

शिवसागर मिश्र (श्री मिश्र आकाशवाणी के केंद्रीय हिंदी रूपक एकांश के चीफ प्रोड्यूसर भी रह चुके हैं)

दिल्ली दूरदर्शन के कार्यक्रम देखकर अनायास ही कई प्रश्न खड़े होते हैं. ये कार्यक्रम क्या हैं, किसके लिए हैं और इनका उद्देश्य मनोरंजन और शिक्षा है या केवल दर्शकों के साथ मजाक करना? इन प्रश्नों का उत्तर खोजते खोजते एक बात साफ हुई कि दूरदर्शन कोई उपयोगी, कलात्मक, मनोरंजक या शिक्षाप्रद कार्यक्रम प्रस्तुत करने में खुद सक्षम नहीं है.

शायद कार्यक्रम प्रस्तुत करने वालों के चारों ओर कई लक्ष्मण रेखाएं खींच दी गयी हैं. प्रोड्यूसर किसी खास वार्ताकार या लेखक को या खास समारोह को अपने कार्यक्रम में शामिल करने के लिए मजबूर हैं, अन्यथा सत्यप्रकाश किरण जैसे प्रशासक को, जिनका पत्रकारिता अथवा सीधे-सीधे लेखन से दूरदराज का रिश्ता न होने पर भी, संसद समीक्षा जैसा महत्वपूर्ण कार्यक्रम न दिया जाता. मुझे याद आ रहा है कि किरण जी ने आंकड़े पर आंकड़े देकर दर्शकों को समझाने की कोशिश की थी कि इस साल अनाज के उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है. उस दिन संसद में कामरोको प्रस्ताव की चर्चा करते हुए उन्होंने बहुत सारे नाम भी गिना दिये थे. परिवार कल्याण और उर्दू विकास से संबद्ध गुजराल समिति का जिक्र भी उन्होंने कर दिया था. यह समीक्षा सुनकर श्रोता के लिए यह समझ पाना मुश्किल था कि इस समीक्षा में वे कहना क्या चाहते हैं.

वैसे किरण जी की विशेषता और महत्ता इतनी है कि वह दूरदर्शन में वर्षों तक वरिष्ठ प्रशासक के रूप में काम करके अवकाश प्राप्त कर चुके हैं. आकाशवाणी और दूरदर्शन में यह परंपरा सी बन गयी है कि अवकाश-प्राप्त केंद्र निदेशकों को ऐसे कार्यक्रम प्रस्तुत करने के बार बार अवसर दिये जायें जिनसे कमाई हो सके. इसमें कोई हर्ज नहीं है, लेकिन उन्हें यदि कार्यक्रम देने हैं तो कम से कम इतना ध्यान तो रखा ही जाना चाहिए कि उन्हें संबद्ध विषय की समीक्षा का ज्ञान हो और व्यक्तित्व भी किंचित दर्शनीय हो.

इसी कार्यक्रम के बाद समाचार प्रसारण शुरू हुआ था. उद्घोषक की आवाज खोखली थी. कालीकट को वह बार-बार 'कालीकट्ट' और महाबोधि को 'महाबीधी' तो कहता ही था, जहां सांस टूट जाती वहीं वाक्य को भी तोड़ देता था. अनुचित स्थान पर वाक्य तोड़ने, क्रिया और वाक्य के अंतिम दो तीन शब्दों पर अकारण जोर देने और गलत उच्चारण के कारण दर्शक में पहले खीझ उत्पन्न होगी और बाद में वह समाचार के अर्थ पकड़ने की कोशिश करेगा. दूरदर्शन या रेडियो ऐसा माध्यम है जो दर्शक या श्रोता को दूसरी बार सुनने-समझने का मौका नहीं देता.

कार्यक्रमों के विश्लेषण से यह तथ्य भी सामने आता है कि भावात्मक एकता के अदृश्य अस्तित्व को दर्शाने के लिए ही नगर

'फाल्टी टावर' अंग्रेजी धारावाहिक का एक दृश्य

> यह परंपरा सी बन गयी है कि अवकाशप्राप्त केंद्र निदेशकों को कार्यक्रम प्रस्तुत करने के बार बार अवसर दिये जायें. इसमें कोई हर्ज नहीं है, लेकिन...

में आयोजित विभिन्न समारोहों की अर्थहीन, रूप-रंग-रस हीन झलकियां दिखा दी जाती हैं. बैसाखी, महावीर जयंती या गुड फ्राइडे के उपलक्ष्य में ऐसे भी समारोह आयोजित हुए होंगे जिनकी रूप-रंग-रस और भावपूर्ण झलकियां फिल्मायी जा सकती थीं.

समारोह फिल्माते समय उसके गीत, नृत्य, वाद्य के ध्वनि अंकन (रिकार्डिंग) पर भी ध्यान देना लाजिमी है, हालांकि दिया नहीं जाता. मसलन, 22 अप्रैल को ईसा मसीह के बलिदान को उजागर करने वाला एक कोरस दिखाया गया था. बहुत कोशिश करने के बाद उसकी एक ही पंक्ति समझ में आयी, 'ईशू ने दी सलीब पर जान.'

कुछ समय पहले विज्ञान भवन में आयोजित एक समारोह में सूचना एवं प्रसारण मंत्री ने घोषणा की थी कि अंग्रेजी को कम नहीं किया जा सकता. भारत में इसका स्थान है. दर्शकों और श्रोताओं ने सोचा होगा : मंत्री राजनीतिज्ञ हैं, यहां उपस्थित वरिष्ठ अधिकारियों को प्रसन्न करने के लिए ही ऐसी बात बोल रहे होंगे. लेकिन सूचना-प्रसारण मंत्री के मन-मस्तिष्क पर वास्तव में अंग्रेज़ियत का काफी दबदबा है.

इसका प्रमाण अक्सर मिलता रहता है. 29 अप्रैल को सुबह दूरदर्शन पर बहुतों ने दिलचस्प कार्यक्रम देखे होंगे. कार्यक्रम का आरंभ ही हुआ बारबापापा कार्टून फिल्म से. यह आयातित अंग्रेजी फिल्म थी. लगभग 20 मिनट तक चलती रही. एनाउंसर (गिरीश बत्रा) ने अगला कार्यक्रम पेश करते हुए कहा : 'जिंदगी जिंदादिली का नाम है.' और इस उद्धरण को सार्थक करने के लिए एक किशोर को लोहे की छड़ को दांत से मोड़ते और शीशे के टुकड़ों पर खुली देह लेटकर दो तीन आदमियों को अपने वक्षस्थल पर खड़ा करते दिखाया गया. इसके बाद फिर बारबापापा फिल्म दुबारा आ गयी. 'स्टार ट्रैक', 'लंदन की झांकी' और 'डिफरेंट स्ट्रोक्स' नामक अंग्रेजी फिल्में भी दिखायी गयीं.

सुबह का प्रसारण तीन घंटे चलता है. अप्रैल के ही एक दिन के कार्यक्रम का हिसाब देखा तो प्रसारण मंत्री की बात समझ में आ गयी. अंग्रेजी को लगभग दो घंटे दिये गये, हिंदी को पैंतालिस मिनट, पांच मिनट पंजाबी को और तथाकथित दूसरी राजभाषा उर्दू को दस मिनट. यह बात भी समझ में आ गयी कि अंग्रेजी हुकूमत के दो सौ वर्षों के अंत में अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों का प्रतिशत केवल एक था, वह स्वाधीनता मिलते ही 1983 आते आते दो प्रतिशत क्यों हो गया. सवाल फिर भी रह जाता है कि किसके लिए अंग्रेजी के इतने सारे कार्यक्रम? हम क्या सांस्कृतिक और कलात्मक दृष्टि से सचमुच दिवालिया हो चुके हैं? ■

दिनमान : 23–29 सितंबर '84, पृष्ठ : 14

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूरदर्शन का वर्तमान चेहरा :

उल्टे कहीं यह गले न पड़ जाये

उदय प्रकाश

टेलीविजन एक विकसित संचार तकनीक है. विकसित तकनीक को अपनाना कोई बुरी बात नहीं. लेकिन जिन देशों में इतनी विकसित संचार तकनीक है, वे समाज भी काफी विकसित हैं. वे औद्योगिक समाज हैं, संपन्न समाज हैं, व्यवस्थित समाज हैं. उनका भौगोलिक क्षेत्र बड़ा सीमित है.

अब सारी समस्या की जड़ यहीं है. हम संपन्न देशों की तकनीक को अपने गरीब और विशाल देश के लिए अपना रहे हैं. विकसित समाज के एक जरूरी उपकरण को हम एक पिछड़े समाज के उपयोग में लाना चाहते हैं. जाहिर है कि इस तकनीक के इस्तेमाल और उसके नियोजन के लिए हमें एक बिल्कुल नया और अपने देशी तरीके का दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा. यह बात साफ रहनी चाहिये कि हमने अपने समाज के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए कोई वैज्ञानिक करिश्मा करते हुए दूरदर्शन का 'आविष्कार' नहीं किया है, यह दूसरे देशों में पहले से था और अब हम उसे अपनी जमीन पर रोपना चाहते हैं. लेकिन यहां की मिट्टी अलग है, वातावरण अलग है, समाज अलग है.

16 सितंबर को दूरदर्शन में ही आयोजित एक परिचर्चा में भाग लेते हुए प्रख्यात समाज-शास्त्री और दूरदर्शन के लिए 'साफ्ट वेयर' के क्षेत्र में रिसर्च करने वाले विद्वान श्री पी. सी. जोशी ने इसी तथ्य को बहुत सधे और सटीक वाक्य में कहा, 'हमारे यहां दूरदर्शन, संपन्न देशों की तरह ड्राईंगरूम की चीज नहीं है. इसे अगर देहातों और झुग्गियों तक पहुंचाने के लिए सरकार ने कमर कस ही ली है, तो उसे बुनियादी रूप से बदलना होगा.' यानी यह देखना पड़ेगा कि 'सोप ऑपेरा' 'लूसी शो' या फिर 'स्ट्रार टेक' वहां के लिए कितने सजातीय और उपयोगी होंगे.

इसी साल नवंबर में जब दूरदर्शन 180 शहरों तक अपने एंटीना तान लेगा तो शायद यह संसार का सबसे विशाल संचार-जाल होगा. इस 'दृश्य-श्रव्य दानव' का असर हमारे समाज पर कैसा–कितना होगा, इसे अभी से जांचने की जरूरत है.

इसी परिचर्चा में प्रख्यात संस्कृतिविद् श्रीमती कपिला वात्स्यायन का कहना था : 'हमारा समाज सांस्कृतिक रूप से बहुत समृद्ध समाज रहा है. गरीब लेकिन संस्कृति से संपन्न. इस समाज की बनावट ऐसी रही है कि यहां की जनता अपने सांस्कृतिक कार्यक्रमों को खुद बनाती रही है. यहां के उत्सव, त्यौहार, मौसमी नृत्य-गीत, पर्व—सब कुछ जातीय जीवन के स्वाभाविक हिस्से रहे हैं. लोग खुद नाचते हैं, गाते हैं, अपने कार्यक्रम बनाते हैं. अद्भुत रचनाशीलता है उनमें. 'अब हम यह करने जा रहे हैं कि बने बनाये कार्यक्रम, हर उत्सव त्यौहार के 'रेडीमेड सांस्कृतिक नाच-गाने' उनके सामने पेश करने का एक यंत्र हर जगह बिठा रहे हैं. यानी अब हम उन्हें उनकी रचनात्मकता से काट रहे हैं. संस्कृति के 'हिस्सेदार' और संस्कृति के 'निर्माता' को हम संस्कृति का 'दर्शक' बना रहे हैं.

दिनमान के 'राष्ट्रीय एकता अंक' में श्रीमती शांता सरबजीत सिंह ने ग्रीस का उदाहरण दिया था. दस साल पहले वहां की सड़कें और पार्क नागरिक जीवन के चहल-पहल से भरे रहते थे, टेलिविजन के बाद वहां भुतहा सन्नाटा छा गया है. हर आदमी कमरे में टी. वी. के सामने बैठा है. संबंध टूट चुके हैं. जो संस्कृति जोड़ने का काम करती थी, वही सबको अलग कर रही है. क्योंकि ग्रीस में एक नया यंत्र आ गया है.

फिर भी किसी भी आने वाली नयी चीज का विरोध एक प्रतिगामी कोशिश है. दूरदर्शन आ गया है और फैल रहा है. इसको न तो नकारा जा सकता है, न इसका खात्मा किया जा सकता है. इसे स्वीकारना तो होगा ही. लेकिन उसी शक्ल में नहीं, जो शक्ल इसे पश्चिम के संपन्न समाज ने दी है. इसका चेहरा ही नहीं, इसका दिमाग भी हमें अपने पिछड़े समाज की जरूरत के हिसाब से बदलना पड़ेगा.

अब बार-बार यह भी कहा जा रहा है कि समाज में जागरूकता फैलाने के लिये, शिक्षा-स्वास्थ्य के लिये इसका इस्तेमाल किया जायेगा. बहुत ठीक. 'मुद्रित-माध्यम' यानी अखबार और किताबें तो निरक्षरता के कारण हमारे देश में बहुत उपयोगी नहीं साबित हो रही थीं. अब दूरदर्शन के सामने निरक्षरता की दीवार आड़े नहीं आयेगी और शिक्षा दिखा-सुनाकर दी जाने लगेगी. लेकिन यह जागरूकता और यह शिक्षा किसको दी जायेगी ? कपिला जी का मानना है कि 'हमारा समाज निरक्षर जरूर है, लेकिन अज्ञानी नहीं.' यहां की निरक्षरता बहुत से कबीलाई और प्रागैतिहासिक समाजों की तरह 'पूर्व सभ्यता की अवस्था' में नहीं है. अगर जनता को प्राथमिक पाठशाला के ककहरा सीखने वाले बच्चों की तरह समझा गया तो उससे ज्यादा हास्यास्पद और कुछ नहीं होगा. यानी दूरदर्शन के नीति निर्धारकों और कार्यक्रम नियोजकों को यह जानना पड़ेगा वे अपने 'अपढ़' लेकिन 'जागरूक' दर्शक के पास जा रहे हैं, सुविधाओं से दरिद्र लेकिन संस्कारों और परम्पराओं से संपन्न दर्शक के पास जा रहे हैं.

और कौन जानता है कि हमारे देश का यह आने वाला विशाल दर्शक वर्ग अगर दूरदर्शन से टकराया तो खुद दूरदर्शन का चरित्र, स्वभाव और ढांचा कितना बदल जायेगा? खरबूजा चाहे चाकू पर गिरे या चाकू खरबूजे पर, नक्शा खरबूजे का ही बदलता है. और अगर दूरदर्शन का नक्शा दूर के दर्शक से टकराकर बदला, तो यह तय है कि तब सिर्फ दूरदर्शन ही नहीं बदलेगा, उसके साथ सिनेमा, अखबार और राजनीति भी बदलेगी.

ऐसी स्थिति में हो सकता है कि वे लोग, जो आज इसे अपनी राजनीति को प्रसारित करने का 'एक बहुत कारगर हथियार' समझ रहे हैं, खुद उनके लिए यह संचार दानव 'बूमरैंग' का काम करे, यानी वैसा ही काम, जैसा मैकाले के पढ़ाये-सिखाये 'बाबुओं' ने ब्रिटिश राज के खिलाफ किया था. ■

श्रीमती शांता सरबजीत सिंह और श्रीमती कपिला वात्स्यायन : आने वाले कल की चिंता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

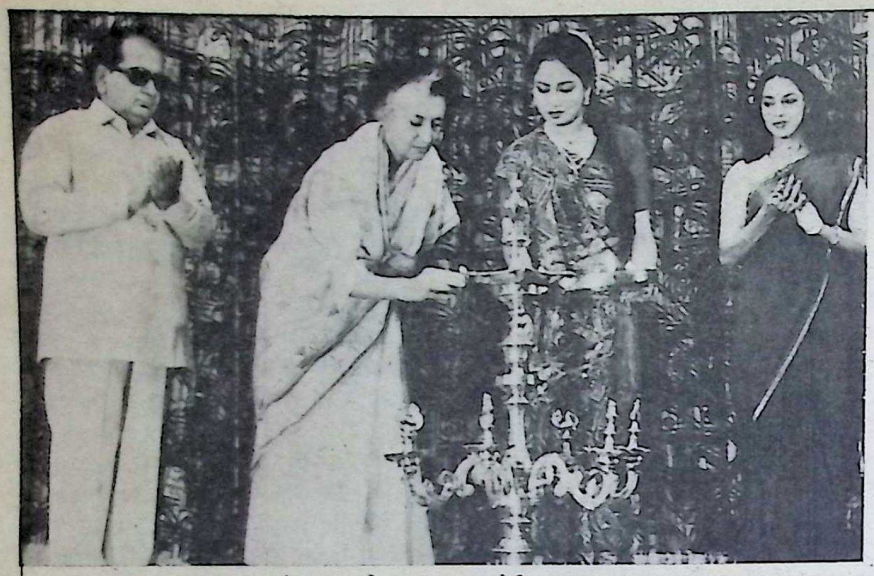

रजत जयंती समारोह का प्रधानमंत्री द्वारा उद्घाटन

दूसरा चैनल : जवानी में पहला कदम

भारतीय दूरदर्शन जवान हो गया है. सिरी फोर्ट में दूसरे चैनल के उद्घाटन के अवसर पर श्रीमती गांधी ने कहा कि जब कभी कोई नया कदम उठाया जाता है तो कुछ लोग उसकी आलोचना करते ही हैं, क्योंकि उसके सही उपयोग और महत्त्व को शुरू-शुरू में वे लोग नहीं समझ पाते. हो सकता है कि प्रधानमंत्री की यह आशा पूरी हो कि दूरदर्शन के दूसरे चैनल से यह संचार माध्यम देश की जनता के लिए अधिक उपयोगी बनेगा और विकास की गति को तेज करेगा. फिलहाल इतना ही कहा जा सकता है कि दूसरा चैनल शुरू करके भारतीय दूरदर्शन ने अपने तेज विकास की उस परंपरा को जारी रखा है जो दो वर्ष पहले एशियाई खेलों के अवसर पर शुरू की गयी थी.

इस सिलसिले में सूचना और प्रसारण मंत्री हरिकिशन लाल भगत ने पत्रकारों को भावी विकास के बारे में कुछ महत्वपूर्ण जानकारियां दीं. उनके अनुसार इस बात की कोशिश की जायेगी कि प्रत्येक राज्य की राजधानी में एक पूर्ण उत्पादन केंद्र स्थापित हो जहां अपने क्षेत्रीय उपयोग के लिए भी कार्यक्रम बनें और राष्ट्रीय प्रसार के लिए भी. जिन स्थानों पर उच्च शक्ति के ट्रांसमीटर हैं वहां भी आंशिक रूप से कार्यक्रम निर्माण की सुविधा प्रदान की जाये. निम्न शक्ति के ट्रांसमीटरों में कार्यक्रम निर्माण का काम सीमित ही होगा. यह स्पष्ट है कि इस व्यापक विकास के लिए स्टूडियो और अन्य सुविधाओं की जरूरत होगी. इस सिलसिले में दूरदर्शन का अनुमान है कि उन्हें कम से कम 700 विशेषज्ञों की जरूरत होगी. इनमें जो भी बाहर उपलब्ध होंगे उन्हें नियुक्त किया जायेगा और वर्तमान कर्मचारियों को प्रशिक्षण देकर कमी को पूरा किया जायेगा. इसी प्रकार काफी संख्या में कैमरा चालकों की भी जरूरत पड़ेगी.

मंत्री ने यह सूचना भी दी कि दूरदर्शन आकाशवाणी और फिल्म प्रभाग के बीच तालमेल स्थापित करके व्यावसायिकता की प्रवृत्ति को बढ़ाने की कोशिश की जायेगी. कार्यक्रम निर्माण के लिए यह भी जरूरी होगा कि गैर विभागीय सहयोग प्राप्त किया जाये. इसलिए एक घोषणा की गयी है कि सौ छोटी-छोटी उत्पादन इकाइयों के विकास को प्रोत्साहन दिया जायेगा. इसके लिए इन इकाइयों के संचालकों को विदेशों से उत्पादन यंत्र किफायती दरों पर खरीदने की सुविधा दी जा रही है. इसके अतिरिक्त व्यावसायिक फिल्मकारों और रंगमंच गुटों से भी कार्यक्रम बनाने के बारे में सहयोग लिया जायेगा.

जहां तक कार्यक्रमों के स्तर और उपयोगिता का सवाल है दूरदर्शन की काफी आलोचना की गयी है. इस सिलसिले में भगतजी ने बताया कि 'मैंने स्वयं 40-50 वरिष्ठ लेखकों को कार्यक्रम बनाने में सहयोग देने के लिए आमंत्रित किया है. इसके अतिरिक्त स्वयं प्रधानमंत्री ने भी कुछ लेखकों को इस सिलसिले में लिखा है. कोशिश यह की जायेगी कि कार्यक्रम सामाजिक रूप से स्वस्थ राष्ट्रीय दृष्टिकोण और विकास को प्रोत्साहन देने वाले और राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने वाले हों. यह बात सही है कि इस समय दूरदर्शन के कार्यक्रमों पर फिल्में हावी हैं.' मंत्री जी के अनुसार, 20 से 30 प्रतिशत कार्यक्रम फिल्मों पर आधारित होते हैं. इस अनुपात को बढ़ने नहीं दिया जायेगा. इसके अतिरिक्त कुछ समय पहले जो 'दूरदर्शन क्लब' बने थे उनको पुनर्जीवित किया जायेगा.

फिलहाल दिल्ली से दूसरा चैनल दो घंटे के लिए चालू रहेगा. आगे इसकी अवधि बढ़ायी भी जा सकती है. शीघ्र ही कलकत्ता, बंबई और मद्रास से भी यह चैनल काम करने लगेगा. इस समय इनसेट-1बी से साढ़े पांच घंटे का कार्यक्रम पूरे देश भर में देखा जाता है. अब यह कोशिश की जायेगी कि विश्वविद्यालयों और अन्य वर्गों के लिए भी नये कार्यक्रम शुरू किये जायें. 14 नवंबर से सरकारी छुट्टियों और दूसरे शनिवार को प्रातः 2 घंटे का अतिरिक्त कार्यक्रम प्रसारित किया जायेगा.

देश में दूरदर्शन ने इसी मास 25 वर्ष पूरे कर लिये हैं. सबसे पहले प्रायोगिक दूरदर्शन सेवायें दिल्ली से 17 सितंबर 1959 को शुरू की गयी थीं मगर एक दशक से भी ज्यादा समय तक इसमें कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई. 1972 के बाद छह अन्य केंद्रों, बंबई, मद्रास, कलकत्ता, श्रीनगर, जालंधर और लखनऊ से दूरदर्शन के प्रसारण शुरू हो गये. अप्रैल 1976 में दूरदर्शन को आकाशवाणी से अलग करके एक अलग निदेशालय के अंतर्गत लाया गया. मगर पहली बड़ी छलांग भारतीय दूरदर्शन ने नवंबर 1982 में लगायी जबकि नवम एशियाई खेलों के दौरान 20 स्थानों पर उच्च शक्ति के ट्रांसमीटर लगा दिये गये. 15 अक्तूबर 1982 से राष्ट्रीय प्रसारण कार्यक्रम शुरू किये गये जो एक साथ सभी केंद्रों से प्रसारित होते हैं. 30 अगस्त 1983 को भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह अंतरिक्ष में भेजा गया जोकि 15 अक्तूबर को काम करने लगा. कार्यक्रमों को प्रसारित करने में इससे काफी सहायता मिली.

कुछ लोगों के अनुसार दूसरी चैनल के सभी कार्यक्रमों को व्यापारिक संस्थाओं के नाम बेचा गया है और इसलिए इन कार्यक्रमों में दूरदर्शन का अपना कोई योगदान नहीं है, मगर दूरदर्शन अधिकारियों का कहना है कि यह आलोचना अपूर्ण और भ्रांतिपूर्ण सूचनाओं पर आधारित है.

॥ अगले अंक में दूरदर्शन के अन्य विवाद ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देश में रंगीन टेलीविजन आने की कहानी

'यह तो पंद्रह दिन की तड़क भड़क है. बाद में वही ढाक के तीन पात. वही घटिया ब्लैक एंड व्हाइट टी वी होगा, वही होंगे घिसे पिटे उधार लिये हुए कार्यक्रम.' कुल मिलाकर यह प्रतिक्रिया थी 1982 में एशियाड के शुरू होने से पहले टी वी के आम दर्शकों की.

आम लोगों की तरह एशियाई खेलकूद की विशेष आयोजन समिति ने भी यह मान लिया था कि एशियाड जैसे खेलों को 'कवर' कर पाना दिल्ली दूरदर्शन के बस की बात नहीं. लिहाजा उसने जापानी और अमेरिकी प्रसारण कंपनियों से इस विषय पर संपर्क भी साधा.

विशेष आयोजन समिति (एस ओ सी) के विदेशी प्रसारण कंपनियों से इस सौदे का पता जब सूचना और प्रसारण मंत्रालय के कुछ निष्ठावान भारतीयता के हामी अधिकारियों को लगा तो उन्होंने एस ओ सी से आग्रह किया कि दिल्ली दूरदर्शन को एशियाड 'कवर' करने का मौका दिया जाये. उन्होंने एस ओ सी को आश्वासन दिलाया कि यदि एशियाड शुरू होने से तीन महीने पहले तक वे यथोचित प्रबंध नहीं कर पायेंगे तो वह विदेशी कंपनियों को यह दायित्व सौंप सकती है. 'असल में यह हमारी तौहीन थी कि हम अपने देश में खेल आयोजित करें और उसे प्रसारित करने के लिए ठेका दूसरे देश के टेलीविजन को दें.' एक दूरदर्शन अधिकारी की प्रतिक्रिया थी. इस समझौते के बाद दिल्ली दूरदर्शन के लिए करीब साढ़े तीन करोड़ रुपए की तदर्थ राशि की अनुमति प्राप्त की गयी तथा एशियाड को ब्लैक एंड व्हाइट में 'कवर' करने की तैयारियां होने लगीं.

इस बीच क्वालालंपुर में एशियाई प्रसारण परिषद (ए बी यू) की बैठक में, जिसमें एशियाई प्रचारतंत्र के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था, यह बात भी सामने आयी कि 31 देशों में सिर्फ दो देश (भारत और कंपुचिया) ही ऐसे हैं जहां रंगीन प्रसारण की व्यवस्था नहीं. लिहाजा अब ध्यान विस्तार के साथ साथ रंगीन टी वी की तरफ गया. और सरकार से इस संदर्भ में बातचीत हुई. अधिकारियों के अनुसार, इस बीच हमने यह भी पता लगा लिया कि प्रसारण केंद्र को (तब 19 प्रसारण केंद्र थे) रंगीन बनाने के लिए 48 लाख अतिरिक्त रुपयों की दरकार होगी. फाइलें इधर से उधर घूमीं, कई नेताओं मंत्रालयों और संस्थानों में टी वी के रंगीनीकरण का विरोध भी हुआ. अंततः जून 1982 में रंगीन टी वी की अनुमति इस शर्त के साथ मिली कि इसका इस्तेमाल बाहरी देशों के लिए होगा.

रंगीन टी वी सेट कुछ लोगों के पास थे और कुछ एशियाड के अवसर पर सरकार की कस्टम शुल्क में उदार और गर्म नीति के कारण आने शुरू हो गये. अधिकारियों ने सगर्व कहा कि जून में रंगीन टी वी के प्रसारण की अनुमति के साथ ही हमने विस्तार कार्यक्रम जारी रखा.

उन के अनुसार, "जो चुनौती हमने स्वीकार की थी उसकी पूर्ति में हमें कदम कदम पर बाधाओं का सामना करना पड़ा—कभी घन की तो कभी जन की. एक तरफ हमारे 150 तकनीशियन पश्चिम जर्मनी में प्रशिक्षण पर थे तो दूसरी तरफ हमें टी वी और रेडियो के कर्मचारियों ने हड़ताल की धमकी दे रखी थी. हड़ताल की तलवार एशियाड के आयोजन से कुछ दिन पहले तक हमारे सिर पर लटक रही थी और हमारे हाथ पांव फूल रहे थे. लेकिन हमें छह ओलिंपिक खेलों को 'कवर' करने वाले पश्चिम जर्मनी के श्री स्टाफर्ड और उनके छह सहयोगियों ने, जो हमारी टीम को अपना अनुभव देने के लिए आमंत्रित किये गये थे, यकीन दिलाया कि हड़ताल हो भी गयी, तो एशियाड के 'कवरेज' में किसी तरह की दिक्कत नहीं आने पायेगी. उससे हमारी जान में जान आयी. लेकिन एशियाड के शुरू होने से एक दिन पहले ही कर्मचारियों ने हड़ताल न करने का फैसला लेकर हमारे अधर में लटके प्राणों को नवजीवन प्रदान किया.

"इस विश्वव्यापी सराहना से कल तक दूरदर्शन को 'विलासिता' की वस्तु मानने वाले लोगों की दृष्टि में भी परिवर्तन हुआ. एशियाड के समय तक हम अपनी आबादी का सिर्फ 17 प्रतिशत ही 'कवर' कर सके. अब लोगों को टी वी से जोड़ने के लिए नये नये सुझाव प्रस्ताव और विचार आने और होने लगे. अंत में 1981 की जनगणना की पुस्तिका उठाकर उसमें एक लाख और उसके ऊपर के शहरों की एक सूची तैयार की गयी. ऐसे नगरों की संख्या 220 बैठती है. तय किया गया कि यदि इन सभी नगरों को टी वी से जोड़ दिया जायेगा तो देश की कुल आबादी का 70 प्रतिशत 'कवर' हो सकता है. एशियाड के दौरान हमें नये नये केंद्र खोलने का अनुभव हो चुका था. यह भी अनुभव मिल गया था कि किस प्रकार हम देशी ट्रांसमीटर केंद्र तैयार कर सकते हैं. साथ ही इन्सेट-2 के सफल हो जाने से हमें अपने विस्तार कार्यक्रम में भी सहायता मिल रही थी.

"इन सभी सुविधाओं को ख्याल में रखते हुए ही हमने 'हर रोज नया प्रसारण केंद्र' का नारा बुलंद किया. उसी नारे के तहत 1984 के अंत तक 180 प्रसारण केंद्र स्थापित हो जायेंगे.

दूरदर्शन के विस्तार और रंगीन कार्यक्रमों को तरतीब देने वाले सूचना और प्रसारण मंत्रालय के भूतपूर्व सचिव शरणबिहारी लाल (अब खान मंत्रालय में सचिव) से जब बात हुई तो उन्होंने रंगीन दूरदर्शन को भारत में प्रतिष्ठापित करने वाली अपनी कठिनाइयों पर चर्चा करने के बजाय सिर्फ इतना कहा कि "उस समय के सूचना-प्रसारण मंत्री साठे साहब की निष्ठा इसके लिए जिम्मेदार है, मैं नहीं. लेकिन दिल्ली में दूसरे चैनल के उद्घाटन के अवसर पर बताया गया कि 'हार्ड वेयर' तो तैयार हो गया है लेकिन' (साफ्टवेयर' पिछड़ रहा है. मतलब यह कि दूरदर्शन का विस्तार भी हो रहा है और सभी केंद्रों से रंगीन प्रसारण होता है लेकिन उनके लिए कार्यक्रम बनाने में दिक्कतें पेश आ रही हैं."

बहरहाल, कल तक से उपेक्षित, दूरदर्शन को आज दुधारू माना जा रहा है. जिस पैमाने पर लोगों की रुचि इस विस्तार कार्यक्रम के साथ साथ कार्यक्रमों में बढ़ रही है लगता है शीघ्र ही वह आत्मनिर्भर होगा. दूरदर्शन से आखिर सभी जुड़े हुए है, 'निरक्षर भी, साक्षर भी, अंधे भी, गूंगे भी. सही मायने में यह राष्ट्रीय एकता की दर्पण है."

राष्ट्रीय एकता के इस दर्पण में हमारे कार्यक्रमों से कितनी राष्ट्रीयता उभरती है और उस दर्पण से हमारे देश की एकता की प्रतिच्छवि कितनी उज्ज्वल है, यह अलग बात है.

—त्रिलोक दीप

शरणबिहारी लाल : साठे को श्रेय

Nepal Sanskrit University, Balmiki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रंगीन देसी टी. वी. आने में वक्त लगेगा

जितेंद्र गुप्त

1982 में अगर दिल्ली में एशियाई खेल नहीं हुए होते तो रंगीन टी. वी. कुछ वर्ष और नहीं आता. जब विदेशों के लिए खेलों के रंगीन प्रसारण का जुगाड़ करना जरूरी पाया गया तो रंगीन टेलीविजन हिमायतियों की बन आयी और चटपट फैसला करा लिया गया कि रंगीन टी. वी. सेट आयात किये जायें, क्योंकि तब वे देश में बन ही नहीं रहे थे. इस आकस्मिक फैसले से करोड़ों रुपये की विदेशी मुद्रा हाथ से निकल गयी और रंगीन टी. वी. का भारतीय नमूना धरा का धरा रह गया. यू. पी. इलेक्ट्रानिक्स लिमिटेड के अध्यक्ष छत्रपति जोशी को मलाल रह गया कि "हमें मौका ही नहीं मिला—अपट्रान ने एशियाड से पहले ही रंगीन टी. वी. बनाने की देसी तकनीक विकसित कर ली थी. देर से फैसला होने के कारण उसके उपयोग में खासा विलंब हो गया."

सरकार टी. वी. उद्योग को खास कर रंगीन टी. वी. के उत्पादन को विशेष प्रोत्साहन दे रही है. उसने इस फैसले पर तेजी से अमल शुरू कर दिया है कि मार्च 1985 के अंत तक देश की 70 प्रतिशत आबादी टेलीविजन प्रसारण की परिधि में आ जाये, इसलिए वह यह भी चाहती है कि मांग के अनुसार टी. वी. सेट उपलब्ध होते रह सकें. आयात और उत्पादन शुल्क की मदों में करीब 90 करोड़ रुपये की रिआयतें दी जा चुकी हैं. भारतीय इलेक्ट्रानिक कार्पोरेशन की मार्फत रंगीन पिक्चर ट्यूबों के आयात की व्यवस्था भी कर दी गयी है. इनसैट 1-बी से प्राप्त संकेतों के पुनर्प्रसारण खंभे जितनी तेजी से लग रहे हैं उतनी तेजी से टी. वी. सैट तैयार नहीं हो पा रहे हैं. इसलिए पिछले दो महीनों में सादे टी.वी. के दाम बढ़े हैं. जिसे सूचना और प्रसारण मंत्री ने भी स्वीकार किया है. मौजूदा हालात में अगले महीनों में भी यही स्थिति रहेगी.

1983 में टी. वी. बनाने वाली 40 इकाइयां थीं; लेकिन केवल 37 उत्पादन कर रही थीं. टी.वी. बनाने के लिए 250 से अधिक कंपनियों को लाइसेंस दिये जा चुके हैं. लेकिन निजी क्षेत्र की सबसे बड़ी टी. वी. निर्माता इकाई वेस्टन इलेक्ट्रॉनिक्स के प्रबंध निदेशक श्री सुंदर वचानी के अनुसार इस वक्त 26 इकाइयां ही रंगीन टी. वी. बना रही हैं. सितंबर मास में 30-35 हजार रंगीन टी . वी. बनेंगे जिसमें वेस्टन की हिस्सेदारी 5000 सेट होगी. टी. वी. निर्माता संघ के अध्यक्ष जे. एस. झवेरी का अनुमान है कि अक्टूबर-नवंबर तक कोई 40 कंपनियां मैदान में आ जायेंगी. तब प्रतिमास 50 हजार रंगीन टी. वी. बनने लगेंगे और मार्च 1985 तक यह दर प्रतिमाह 80 हजार हो जायेगी. यों जिसने भी टी. वी. बनाने की इच्छा व्यक्त की सरकार ने उसे मना नहीं किया और कोई 450 लोगों को इच्छा पत्र जारी कर दिये. देखना है कि अच्छे लाभ की संभावना के बावजूद कितनी इकाइयां लाइसेंस लेती हैं और कितनी सचमुच उत्पादन शुरू करती हैं.

सुंदर वचानी : कार्यक्रम उम्दा होंगे तो रंगीन टी. वी. की मांग भी ज्यादा होगी

1983 में लगभग छह लाख सादे टी वी बने थे और इस वर्ष उसके दूने सेट बनेंगे. रंगीन टी वी का उत्पादन पिक्चर ट्यूबों की उपलब्धि पर निर्भर करता है क्योंकि ये देश में नहीं बनते. सूचना और प्रसारण मंत्री हरकिशनलाल भगत के अनुसार 1984-85 में उत्पादन का लक्ष्य 20 लाख सेट रखा गया है. मांग भी इसी के आसपास आंकी गयी है.

प्रौद्योगिकी की दृष्टि से सादे टी वी में लगने वाला सारा साज सामान भारत में ही उपलब्ध है. एक उद्योगपति के अनुसार उसमें 40-50 रु. का ही विदेशी माल लगता है, लेकिन रंगीन टी. वी. के लिए पिक्चर ट्यूब और ट्यूनर समेत विदेशी उपकरणों का मूल्य कुल का 70 प्रतिशत तक बैठता है.

सस्ता टी वी और अच्छा भी

सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई यू.पी. इलेक्ट्रानिक्स की एक झलक

पिछले वर्ष टी वी निर्माताओं में यू. पी. इलेक्ट्रानिक्स का स्थान तीसरा था और सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माताओं में पहला. वह अन्य अनेक क्षेत्रों में भी पहली पंक्ति में है. सादे टी वी के हिस्से-पुर्जे, यहां तक कि पिक्चर ट्यूब भी वह खुद बनाता है और भविष्य में रंगीन टी. वी के लिए भी ट्यूब बनायेगा. इसके लिए 100 करोड़ रु. की लागत से एक कारखाना खुलेगा जो यू. पी. इलेक्ट्रानिक्स उद्योग समूह का सबसे बड़ा कारखाना होगा. रंगीन पिक्चर ट्यूब बनाने के लिए दो लाइसेंस और दिये गये हैं.

बाजार में भारतीय इलेक्ट्रानिक्स निगम के ई सी टी वी की तरह अपट्रान के टेलीविजनों की भी साख अच्छी है और दाम भी सबसे कम हैं. अपट्रान के अध्यक्ष श्री छत्रपति जोशी गर्व से बताते हैं कि, "हमारा रंगीन टी वी (51 सेंटीमीटर) बाजार में सबसे सस्ता है—केवल 5,860 रुपये का." ई सी टी वी का भी यही दाम है—दोनों सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माता हैं जिनसे उम्मीद की जाती है कि वे सबसे कम दाम पर टी वी बेचेंगे. निजी निर्माताओं के मुकाबले दूसरा फर्क है तो केवल यह कि साथ में 12 महीने की जगह केवल तीन माह की गारंटी है. प्रकटतः यह दाम कम रखने के लिए किया गया है, लेकिन जोशी जी का तर्क है कि टी वी में अगर कोई खराबी या कमी है तो वह तीन महीने में सामने आ जाती है." निजी क्षेत्र के सेटों के दाम ज्यादा होने के कारण उनके शब्दों में हैं: "निजी क्षेत्र की इकाइयां जिस तरह विदेशों से टी वी के हिस्से-पुर्जे आयात करती हैं, उसमें यह निहित है कि वे महंगे पड़ें. नववढ़ लोग सस्ते और अच्छे के पीछे नहीं विदेशी ठप्पे के पीछे भागते हैं, इसलिए —वे विदेशी माल के लिए कोई भी रकम खर्च कर सकते हैं, वही उनकी निगाह में उम्दा और टिकाऊ होती है."

अपट्रान का रंगीन टी वी सस्ता है, आसानी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

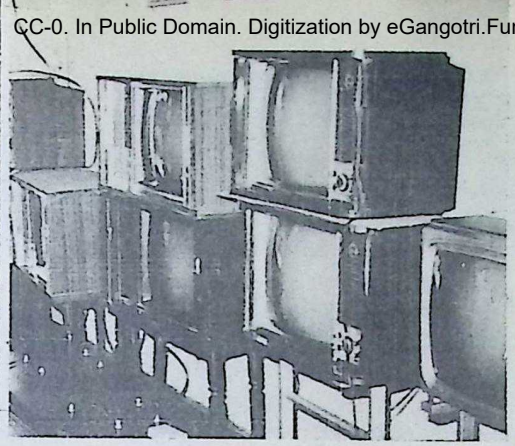

(बाएं) लक्ष्मी इलेक्ट्रानिक्स का 'फोर इन वन' : टेलीविजन, रेडियो, कैसेटप्लेयर और इलेक्ट्रानिक घड़ी, सब एक में (ऊपर) टी. वी. दूकान : आजकल मोलभाव नहीं होता

रंगीन टी. वी. निर्माता फिलहाल पैंचकस तकनीक के सहारे टी. वी. बना रहे हैं. अभी तो विदेशों से आधे बने या बने हुए टी. वी. को अलग अलग खंडों में आयात करके उन्हें पैंचकस से कस दिया जाता है. एशियाड के मौके पर कोरिया और जर्मनी से 90,000 रंगीन किट आयात किये गये थे. तब लोगों को यह छूट भी दी गयी थी कि वे विदेशों में बसे अपने मित्रों, रिश्तेदारों या आने जाने वालों से टी. वी. मंगायें तो आयात शुल्क में रिआयत मिलेगी. इस सुविधा के अंतर्गत 2-3 लाख सादे और रंगीन सेट देश में आ ही गये होंगे.

कीमत ऊंची होने के बावजूद रंगीन टी. वी. का बुखार चौतरफा फैला हुआ है. सार्वजनिक क्षेत्र के दो उत्पादकों के सेटों का दाम कुछ कम जरूर है, लेकिन गारंटी की अवधि भी सिर्फ तीन महीने है. साल भर की गारंटी चाहिए तो अपट्रान का रंगीन टी. वी. सेट (51 सेंटीमीटर)) 6,100 रु. का पड़ेगा. और अगर इलेक्ट्रानिक ट्यूनर वाला सेट हुआ तो दाम और बढ़ जायेंगे. फिर भी वह निजी निर्माताओं के सेटों से सस्ता है क्योंकि उनका सेट 8000 रु. का बैठता है. टी. वी. निर्माता संघ के अध्यक्ष ने कुछ समय पहले इलेक्ट्रानिक्स मंत्रालय को आश्वासन दिया था कि उसके सदस्य अक्टूबर तक 7500 रु. में 51 सेंटी-मीटर का रंगीन टी. वी. देने की स्थिति में हो जायेंगे.

इलेक्ट्रानिक्स मंत्रालय में उपमंत्री श्री संजीवी राव संभावित ग्राहकों को आश्वस्त कर रहे हैं कि जब देशी रंगीन टी. वी. बनने लगेगा तो वह साढ़े पांच हजार रुपये से भी कम में मिलेगा. सरकार ने चुने हुए टी.वी. निर्माताओं को देसी टी. वी. बनाने की अनुमति देनी शुरू कर दी है. पूरा देसी टी. वी. तो तभी बनेगा जब पिक्चर ट्यूब भी हिंदुस्तान में बनने लगेंगे, लेकिन अभी इसमें काफी समय लगेगा.

इस वक्त रंगीन टी. वी. की मांग एक लाख सेट प्रतिमाह कूती जा रही है, जबकि आपूर्ति आधी भी नहीं है. फिर भी निकट भविष्य में रंगीन टी. वी. की मांग के बारे में वेस्टन के प्रबंध निदेशक की टिप्पणी है: 'यह कार्यक्रमों पर निर्भर करता है—अगर वे अच्छे होंगे तो मांग बनी रहेगी, वरना मैं नहीं कह सकता कि आगे क्या होगा ?'

भारत सरीखे गरीब देश में रंगीन टी वी की मांग और खपत आम आदमी की माली हालत पर निर्भर नहीं करती. उसके तीन संबल हैं (1) धनी वर्ग, जो मनोरंजन के लिए आठ क्या सोलह हजार का टी. वी. या वीडियो कैसेट रिकार्डर खरीद सकता है. (2) खाता पीता मध्यवर्ग, जो आराम और जरूरत की चीजों में कटौती करके भी चाहेगा कि कहीं तो अपने को उच्च वर्ग से जोड़ सके या अपने को उसके समकक्ष मान सके. (3) संस्थागत सहयोग : पंचायतें, नगर निगम, राज्य सरकारें, शिक्षा संस्थान क्लब आदि रंगीन टी. वी. खरीदेंगी. विश्व विद्यालय अनुदान आयोग शिक्षा संबंधी प्रसारणों के लिए मसलन टी.वी. की खरीद को प्रोत्साहित करेगा. केंद्र और राज्य सरकारें भी चाहती हैं कि सब के लिए भोजन और पानी की व्यवस्था में समय लगे तो लगे मनोरंजन और राष्ट्रीय कार्यक्रमों से लोगों को क्यों महरूम रखा जाये.

इसके अलावा रंगीन टी वी से जुड़ा हुआ एक और बुखार फैल रहा है जो उसे संबल देगा. यह है वीडियो टेप. ये दोनों मिलकर तमाम मुहल्लों, कस्बों और गांवों के लोगों की बैठकों को छोटे छोटे 'सनीमाघरों' में तब्दील करते जा रहे हैं. टी. वी. और वीडियो की जोड़ी सिने निर्माताओं और वितरकों के लिए चुनौती बन गयी है. इससे एक दिन दूसरों की तरह उन्हें भी समझौता करना होगा.

सरकार की विस्तार नीति और उद्योग के सहयोग समर्थन से दूरदर्शन कार्यक्रम देश के सांस्कृतिक सामाजिक जीवन में घुसे जा रहे हैं. इन क्षेत्रों में टी. वी. के अच्छे बुरे असर जो भी हों, रेडियो सेटों पर उसका जरूर बुरा असर पड़ा है. रेडियो सेटों का उत्पादन बढ़ता जा रहा था, जो 1983 में एकदम से घट गया. इस वर्ष 60 लाख रेडियो बने जबकि पिछले साल 71 लाख बने थे. दूरदर्शन के कार्यक्रम चाहे जैसे हों, रेडियो का सामाजिक दर्जा सुधरने से रहा. ■

से मिलता नहीं. उत्पादन की दर है—महीने में केवल 5 हजार. सादे टी वी भी महीने में 10 हजार बन रहे हैं. इस तरह 1984 में वह डेढ़ लाख सेट बना लेगा जबकि 1983 में केवल 54,000 सेट बने थे. उत्पादन की रफ्तार अभी और बढ़ेगी. अध्यक्ष श्री जोशी का कहना है कि 'पूरी गति से उत्पादन होने में तीन-चार माह और लगेंगे.'

1983-84 में यू. पी. इलेक्ट्रानिक्स ने 53 करोड़ रु. का माल बेचा, जिसमें से टी वी का हिस्सा 27 करोड़ रु. था. श्री छत्रपति जोशी के अनुसार "हमने शुरुआत मनोरंजन के उपकरणों से ही की थी. किंतु धीरे धीरे हिस्से-पुर्जे, फिर कंप्यूटर पर आधारित संचार प्रणाली, पावर इलेक्ट्रानिक्स और संचार संयत्र बनाने शुरू किये. संयुक्त क्षेत्र की और भागीदारी वाली कंपनियों में जब पूरी रफ्तार से उत्पादन होने लगेगा कि हमारी कुल बिक्री 200 करोड़ की रेखा पार कर जायेगी."

इलेक्ट्रानिक्स उद्योग की समस्याओं के बारे में जोशी जी का कहना है कि सबसे बड़ी समस्या उत्पादन के आकार की है : "पूरी तरह देसी तकनीक अपनायी जाये तो बड़े पैमाने पर उत्पादन करना पड़ेगा क्योंकि तभी किफायत होती है, चीजें सस्ती पड़ती हैं. अगर इतने बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाये तो भारत का बाजार छोटा पड़ने लगता है. फिर हिस्से पुर्जों का बाजार बहुत खतरनाक होता है—ज्यादा पूंजी लगती है और अगर माल न बिक पाये तो नुकसान की संभावना रहती है... कभी कभी सफलता मिल जाती है. 'अपट्रान कैपेसिटर' कैपेसिटर बनाने वाली देश की सबसे बड़ी कंपनी है. आजकल हम एक करोड़ रुपये से अधिक का माल हम जर्मनी, फ्रांस स्पेन भेज रहे हैं.'

दूरसंचार के विशेषज्ञ श्री छत्रपति जोशी 8 वर्ष से यू पी इलेक्ट्रानिक्स के तथा उसकी कुछ सहयोगी कंपनियों के भी अध्यक्ष हैं. वह केंद्रीय गृहमंत्रालय में पुलिस दूर संचार के निदेशक और सलाहकार, बी. एस. एफ. के इंस्पेक्टर जनरल (संचार) और एशियाड के संचार सलाहकार भी रह चुके हैं. दूरसंचार के प्रति पूर्णतः समर्पित श्री जोशी सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र की अनेक दूरसंचार योजनाओं से जुड़े हुए हैं. टेलीविजन उसका मनोरंजन से जुड़ा केवल एक पक्ष है. यही स्थिति यू पी इलेक्ट्रानिक्स की है. ■

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राशन का भाषण से रिश्ता

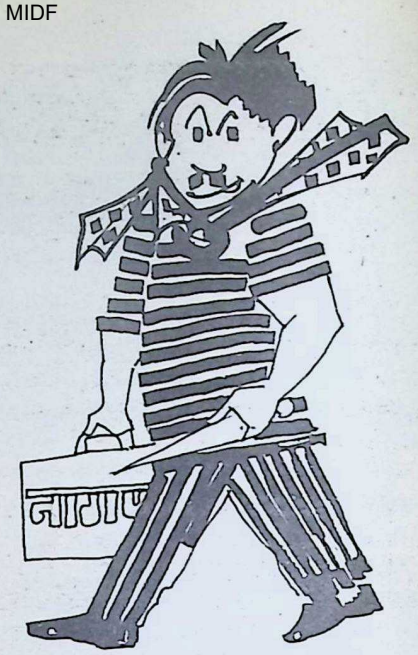

श्रीनगर हो या नागपुर, आदमी के दिमाग के लिए सही रास्ता पेट से ही होकर जाता है. अनाज की प्रचुरता के इस वर्ष में भी दोनों नगरों ने इस बात को नगाड़े की चोट पर सिद्ध कर दिया है. श्रीनगर की बात कुछ पुरानी जरूर है मगर निस्सार नहीं. बात मई की है—26 मई की. श्रीनगर में इकबाल पार्क में फारूख अब्दुल्ला (तब तक उनकी कुर्सी के चारों पाये जमीन पर ही टिके हुए थे) अपनी नेशनल कांफ्रेंस का प्रतिनिधि सम्मेलन आयोजित कर रहे थे. दूर दूर से प्रतिनिधि आये थे तो उनके खाने का प्रबंध भी करना था. स्वागताध्यक्ष थे पार्टी के उपाध्यक्ष और वरिष्ठ मंत्री बद्रवाही साहब. भाषण चल ही रहे थे कि खाने का समय हो गया.

भाषणों से ऊबे प्रतिनिधि टिड्डी दल की तरह उमड़ पड़े खाने के पंडाल पर. फिर क्या था, छीना झपटी, धक्का मुक्की. तू-तड़ाक. सब कुछ हुआ ही, बेचारी बीस-पच्चीस औरतें इस ढींगा मुश्ती में बुरी तरह कुचली गयीं और किसी तरह जान बचा कर पंडाल छोड़ कर भाग खड़ी हुई. बद्रवाही साहब भारी भरकम डीडडौल के बावजूद कुछ नहीं कर पाये. उल्टे अपने कपड़े फड़वा कर तिलमिलाये हुए मंच पर आ धमके और दो टूक भाषा में प्रतिनिधियों पर बरस पड़े. बोले, 'मैं मूलतः पुलसिया हूं. और इस तरह की बदतमीजी बर्दाश्त नहीं कर सकता.'

बद्रवाही कभी पुलिस में हुआ करते थे. इधर वह भाषण दे रहे थे उधर भोजन पंडाल का दृश्य ऐसा हो गया था जैसे लुटेरे लूटमार करके अभी अभी चले गये हों.

यहां तो मामला इतने पर ही निपटा मगर उधर नागपुर में तो बाकायदा लूटमार मच गयी. सम्मेलन भी तो बहुत बड़ा था. देश के विभिन्न राज्यों से नेशनल स्टूडेंट्स यूनियन आफ इंडिया के तीस हजार प्रतिनिधि शामिल होने वाले थे. कुछ लोग कहते हैं कि तीस के बदले 50 हजार पहुंच गये. छात्रों ने रेल-गाड़ियों में बैठते ही अपना रंग जमा लिया. जहां गाड़ी रुकी उतर पड़े स्टेशन पर और जो भी खाने की चीज दिखाई दी झपट पड़े. एक दैनिक समाचारपत्र के संवाददाता ने छतीसगढ़ एक्सप्रेस को इसीलिए 'लूटमार एक्सप्रेस' नाम दे दिया. उन्होंने अपने मन से थोड़े ही यह नाम दिया होगा. लोगों ने कह दिया सो उन्होंने लिख दिया. कहते हैं कि पिछले स्टेशनों का हाल सुनते ही आने वाले स्टेशनों पर खोमचे वाले अपनी गाड़ियों को सीढ़ियों के पीछे छिपाने लग गये और ढाबे वालों ने अपने शटर नीचे गिरा दिये.

नागपुर में माजरा कुछ दूसरा ही था. छात्र प्रतिनिधियों को शिकायत थी कि आयोजकों ने खाने का सही बंदोबस्त नहीं किया था. इसलिए वह आसपास के बाजारों में उतर आये. दुकानदार इक्की दुक्की घटनाओं से यह अंदाजा तो लगा ही चुके थे कि कहर बरपा होने वाला है. सो उन्होंने पहले से ही पट बंद कर दिये. एक इलाके में खाने की सभी दुकाने बंद हो गयी. छात्रों को इससे गुस्सा तो आना ही था. उन्होंने लूटमार शुरू कर दी. जहां जो मिला उसे ही दबोच लिया.

पेट की आग को बुझाने के लिए राष्ट्रीय विद्यार्थी संगठन ने अपनी युवा शक्ति का परिचय तो दिया ही अन्य प्रकार की भूख मिटाने के लिए वे आसपास के क्षेत्रों में चक्कर लगाने लगे. लड़कियों के साथ छेड़छाड़ इस वातावरण में स्वाभाविक थी, छात्र तो तथाकथित देह बाजार पर भी चढ़ आये, यहां के आम्रपाली संघ ने तो शिकायत की कि लड़कों ने उनका जीना हराम कर दिया. स्थानीय लोग न मालूम क्यों कुपित हो गये. कई मुहल्लों में तो जम कर उन्होंने पथराव किया और पुलिस को आकर अपनी लाठियों का करतब दिखाते हुए क्रुद्ध भीड़ को तितर बितर करना पड़ा. स्थानीय लोग तो स्थानीय ही ठहरे, स्वयं प्रतिनिधियों के कई गुट आतंकित दिखाई दिये. बंबई से आने वाले प्रतिनिधि मंडल (जो कि संभवतः सबसे बड़ा प्रतिनिधि मंडल था) ने माहौल देख कर यह तय किया कि महिला प्रतिनिधियों को सम्मेलन स्थल से दूर ही रखा जाये. सम्मेलन की कार्रवाई में हिस्सा लिये बिना ही ये लड़कियां वापस लौट गयीं.

विराट छात्र शिविर के प्रतिनिधियों द्वारा इस भोजन लूट लीला के पीछे एक कहानी छिपी हुई है. मुख्यमंत्री दादा पाटील चाहते थे कि छात्रों के इस सम्मेलन से प्रभावशाली शुरुआत हो इंका के चुनाव अभियान की. क्योंकि महासचिव राजीव गांधी और प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी दोनों की इसमें रुचि थी इसलिए मुख्यमंत्री ने अपनी ओर में भरपूर कोशिश की कि यह सफल हो. स्वयं नागपुर गये. समास्थल का निरीक्षण किया, विभिन्न प्रकार के प्रबंधों की समीक्षा की. इस सिलसिले में वह अचानक संचालन समिति के अध्यक्ष से टकरा बैठे. अध्यक्ष थे—विधायक श्रीकांत जयकर. जयकर ने पांच जीपें मांगी, तो दादा बोले, अगर तुम अपने बूते पर पांच जीपों का भी प्रबंध नहीं कर सकते तो कहां के संचालक बनते हो. जयकर ने खाने का बजट पेश किया—33 लाख रुपया, 22 रु. प्रति प्लेट के हिसाब से. जिसमें मांसाहारी और शाकाहारी भोजन दोनों शामिल थे. दादा को गुस्सा आया. बोले, मांसाहारी भोजन की क्या जरूरत है? केवल शाकाहारी भोजन का प्रबंध करो. और आव देखा न ताव 33 लाख रु. को काट कर 11 लाख कर दिया. अब यह जुल्म नहीं तो क्या? इतना बड़ा खाने का बजट तो कुछ सोच कर ही बनाया होगा संचालकों ने. मुख्यमंत्री नहीं माने. और नतीजा यह हुआ कि खाने के लिए हायतोबा मच गयी और नागपुर शहर के लोगों को देश भर के 'भावी नेताओं' के कोप का भाजन बनना पड़ा. बेचारे मुख्यमंत्री ने क्या सोचा था क्या हो गया. उनकी योजना तो थी कि इस शिविर के माध्यम से महामंत्री राजीव गांधी को अपने प्रभावशाली प्रशासन और लोकप्रियता का एहसास कराया जाये. मगर उनके 'दुश्मनों' ने होने नहीं दिया. जयकर के ऊपर भी उन्होंने अपने एक विश्वासपात्र मंत्री सुधाकर नाइक को नियुक्त किया था.

भाषण का राशन से सीधा संबंध होता है, खासकर यदि वह सत्तारूढ़ दल का हो. आगे के लिए शायद सत्तारूढ़ दल सबक सीख ही ले कि सम्मेलन आयोजित करना है तो भाषणों की कमी भले ही पड़े, हर तरह का राशन मुहैया करना ही चाहिए.

—जवाहरलाल कौल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आंध्रप्रदेश

अगली लड़ाई लोक और तंत्र के बीच होगी?

(हमारे विशेष संवाददाता द्वारा)

लोकतंत्र विजयी हो गया. मुख्यमंत्री पद की दूसरी बार शपथ लेने के बाद पार्टी विधायकों को संबोधित करते हुए श्री रामराव ने कहा कि उनका धर्मयुद्ध प्रजायुद्ध में बदल गया था. "जीत हमारी हुई. श्रेय आपको है. प्रेरणा मुझे आपसे मिलती है. हम जब तक संगठित हैं तब तक कोई भी हमें कमजोर नहीं कर सकता. संगठित प्रतिपक्ष ने लोकतंत्र की रक्षा में साथ दिया. एक नयी चेतना जगायी. जब भी लोकतंत्र पर खतरा आयेगा, यह एकता आदर्श का काम करेगी."

तो, लोकतंत्र की यह वापसी एक तरफ रामराव समेत अन्य अनेक प्रतिपक्षी दलों को संघर्ष की सफलता पर भाव विभोर करती है, दूसरी तरफ कांग्रेस को—विशेष कर श्रीमती गांधी को जनता को यह यकीन दिलाने का अवसर देती है कि वे भी लोकतंत्र की रक्षा के लिए कितनी प्रतिबद्ध हैं. श्रीमती गांधी ने कई अवसरों पर कहा था कि तेलुगुदेशम् की आपसी लड़ाई में कांग्रेस का हाथ नहीं है. अब रामराव की वापसी को केंद्र की तटस्थता और उदारता की मिसाल से जोड़कर प्रस्तुत किया जायेगा. जाहिर है कि इस वापसी के बाद कांग्रेस के चेहरे पर उभर आये बदनामियों के धब्बे कुछ दूर तक मिट जायेंगे.

16 सितंबर के तीन-चार दिन पहले गृहमंत्री नरसिंह राव ने एक वरिष्ठ कांग्रेसी नेता से कहा था कि केंद्र आंध्र में राष्ट्रपति शासन लागू करने के पक्ष में नहीं है. उसी के आसपास राजीव गांधी ने एक बयान में कहा था कि आंध्र में जिस दल का बहुमत होगा वह सरकार बनायेगा. 15 सितंबर के आसपास आंध्र के राज्यपाल डा. शंकरदयाल शर्मा ने भी अपने करीब के एक व्यक्ति से कहा था कि जिंदगी के आखिरी दौर में वह ऐसा कोई फैसला नहीं करेंगे जो उनकी सार्वजनिक छवि को धूमिल कर दे. राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह ने भी, जैसा कि सुना जाता है, गृहमंत्री से बातचीत में सही न्याय कराने की अनिवार्यता पर जोर दिया था. श्रेय के भागीदार और न्यायप्रिय होने के दावेदार बहुत से लोग हो सकते हैं. एक खबर यह भी थी कि राष्ट्रीय राजनीति में प्रतिपक्षी भूमिका को लेकर श्री रामराव और श्रीमती गांधी में कोई ऐसी सहमति हो गयी थी जो श्री रामराव की वापसी में अंततः सहायक हुई. इस खबर पर यकीन करना मुश्किल लगता है. इतना तय है कि महीने भर बाद भी भास्कर राव द्वारा बहुमत न जुटा सकने की असलियत जान लेने, और प्रतिपक्ष के दबाव के निरंतर बढ़ते रहने के अहसास ने कांग्रेस को अपने पुराने फैसले पर नये सिरे से सोचने और उसे बदलने पर मजबूर किया. यह फैसला लोकतंत्र को ओढ़ने-बिछौने के रूप में देखने वालों को सुखद लग सकता है. लगना भी चाहिए.

पर सवाल यह है कि क्या वह फैसला लोकतंत्र की लड़ाई का सचमुच अंतिम नतीजा है? कहीं ऐसा तो नहीं कि रामराव की यह जीत सिर्फ एक मोर्चे की जीत है.

इस सिलसिले में राजीव गांधी का बंगलूर में दिया हुआ वह बयान महत्वपूर्ण है जिसमें उन्होंने कहा था कि 'आंध्र का नाटक खत्म न हो कर सिर्फ शुरू हुआ है.' अगर यह बयान सही है तो उसे भास्कर राव के बयान से जोड़ कर देखने पर कुछ नये अनुमान सामने आते हैं. श्री रामराव के मुख्यमंत्री हो जाने के बाद भास्कर राव ने एक प्रेस कांफ्रेंस में कहा था, 'मेरे त्यागपत्र देने के पहले तक तेलुगुदेशम् के 90 फीसदी विधायक मेरे साथ रहे. रामराव को मुख्यमंत्री की कुर्सी पर बैठने का एक मिनट के लिए भी अधिकार नहीं है, क्योंकि मेरे समर्थकों की जान-जायदाद खतरे की शिकार है.'

इस प्रेस कांफ्रेंस में सवाल पूछने की अनुमति नहीं थी. जवाब शायद उनके लिए भारी पड़ता. भास्कर राव ने यह भी कहा कि रामराव ने उनके समर्थक विधायकों को रोक रखा है. उन्हें छुड़ाने की कोशिश जारी रहेगी. ऐसे विधायकों को मुक्त कराने की भी मांग उन्होंने की है. ऐसी स्थिति में इस आशंका को निराधार नहीं माना जा सकता कि रामराव मंत्रिमंडल के बाकायदा बन जाने और तेलुगुदेशम् के विधायकों के घूमने फिरने पर कोई बंदिश न रह जाने, या उनके आसानी से उपलब्ध हो जाने के बाद भास्कर राव उन्हें किसी भी कीमत पर खरीद लेने की कोशिश कर सकते हैं. चूंकि कांग्रेस ने अभी भी यह नहीं कहा है कि वह भास्कर राव को समर्थन नहीं देगी, अतः मुमकिन है कि जो परिस्थिति महीने डेढ़ पहले रामराव की बर्खास्तगी की वजह बनी थी, वही एक बार फिर पैदा हो जाये. तब लोकतंत्र की लड़ाई, लोक और तंत्र की लड़ाई में बदल जाये तो ताज्जुब नहीं होगा.

एक बात और स्पष्ट है. तेलुगुदेशम् की फूट के बाद रामराव की शक्ति बीस महीना पहले की तुलना में क्षीण हो गयी है. इसीलिए रामराव को अब अधिक सतर्कता से काम करना तथा पार्टी के अपने सहयोगियों को अधिक विश्वास में लेना पड़ेगा. सुखद स्थिति यह है कि उनके सत्ता संभालने के बाद भास्कर राव का साथ देने वाले 3-4 विधायक पुनः रामराव गुट में शामिल हो गये हैं. रामराव को अपनी पुरानी कार्यशैली भी बदलनी पड़ेगी. इसकी सलाह, उनका समर्थन करने वाले कुछ प्रतिपक्षी दलों ने भी दी है. कांग्रेस को एक फायदा यह मिलेगा कि अब आने वाले दिनों में रामराव की चिंता भास्कर राव होंगे. इसी लिए उनके आक्रमण का पहला लक्ष्य भास्कर राव और उनके साथी होंगे. इस रूप में कांग्रेस कुछ दूर तक बची रह जायेगी.

जहां तक रामराव का संबंध है उनके आत्मविश्वास में कमी नहीं आयी है. राज्यपाल द्वारा अपना बहुमत साबित करने के लिए तीस दिन का समय देने के बावजूद उन्होंने तीन दिन के भीतर यानी 20 सितंबर को ही उसका फैसला करा देने की घोषणा की. जिस भास्कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राव ने तेलुगुदेशम् के 91 विधायकों के साथ होने की घोषणा करके राज्यपाल रामलाल को रामराव मंत्रिमंडल बर्खास्त करने के लिए राजी कर लिया था उसी भास्कर राव के पास इस वक्त सिर्फ 61 विधायक हैं. अतः अब उनका दावा मुख्य प्रतिपक्षी दल के रूप में स्वीकृति पाने का है. इसके पहले तक मुख्य-प्रतिपक्षी पार्टी कांग्रेस थी जिसके 57 विधायक थे. अब वह नंबर दो पर आ गयी है. एक योजना के असफल हो जाने का दुखद परिणाम. कांग्रेस चूंकि दलबदल की साजिश में शामिल न होने की बात बार बार कहती रही है, इसीलिए उसे कोई अफसोस भी नहीं है. एक वरिष्ठ कांग्रेसी नेता ने दिल्ली में कहा भी, 'इसमें शर्मिंदगी की कोई बात नहीं है. राजनीति में यह सब होता ही है. हमने भास्कर राव से तेलुगुदेशम् को खंडित करने के लिए नहीं कहा. वह खुद अलग और सरकार बनाने के लिए आतुर थे. हमने सोचा कि अगर हमारे समर्थन से वैसा हो जाये तो उसमें कोई बुराई नहीं है.'

कांग्रेस के एक महासचिव श्री मूप्पनार ने रामराव की वापसी की एक और रूप में व्याख्या की. उन्होंने कहा, 'लोग (यानी प्रतिपक्षी दल) जिस संवैधानिक प्रावधान और राज्यपाल की एक संस्थान के रूप में निंदा कर रहे थे, उसी संस्थान और प्रावधान के चलते रामराव को दुबारा सत्ता मिली.'

एक महीने के लंबे दुःस्वप्न से गुजरने वाले रामराव के सामने का रास्ता निष्कंटक नहीं है. देखना होगा कि वह कितनी चतुराई से काम ले पाते हैं.

इस बार के दंगों का एक खास चरित्र रहा

सत्ता परिवर्त्तन के इस नाटक पर पटाक्षेप होने से पहले की घटनाओं के बारे में हैदराबाद से हमारे संवाददाता वेणु गोपाल ने लिखा है:

हैदराबाद में एक मुहावरा प्रचलित है— बेहया बोले तो एम अरपा, जिसका मतलब है कि किसी को बेहया कहे जाने पर वह जवाब में कहे, 'कहिए जनाब'. रामराव की सत्ता में वापसी से पहले आंध्रप्रदेश की राजनीति में यही माहौल था जिसके तहत 11, 12 और 13 तारीख को विधानसभा की कार्यवाही न चलने देने के लिए जिम्मेदार सलाहुद्दीन उवैसी को, बागा रेड्डी के त्यागपत्र के बाद, राज्यपाल ने अस्थायी अध्यक्ष मनोनीत कर दिया. (बाद में राज्यपाल ने उवैसी को बर्खास्त करके सत्तारूढ़ गुट के पी. महेंद्रनाथ को अस्थायी अध्यक्ष बना दिया.)

4 सितंबर को जब यह घोषणा की गयी कि 11 सितंबर को विधानसभा का अधिवेशन होगा जिसमें भास्कर राव अपना बहुमत सिद्ध करेंगे तो 16 दिन से प्रदेश की राजनीति में जो उबाल आया हुआ था उसमें क्षणिक ठहराव आया और लोगों ने राहत की सांस ली. लेकिन उन्हें तब यह कहां मालूम था कि विधानसभा अधिवेशन शुरू होने से पहले उनको सांप्रदायिक जुनून का शिकार होना पड़ेगा.

हैदराबाद के लोगों ने जैसे तैसे 9 और 10 तारीख के दंगे और कर्फ्यू झेला और जब 11 तारीख को विधानसभा का अधिवेशन शुरू हुआ तो एक बार फिर उन्होंने सब कुछ ठीक हो जाने की उम्मीद बांधी. लेकिन भास्कर राव के पास बहुमत नहीं था सो उनके समर्थकों ने हुड़दंग मचाकर अधिवेशन की कार्यवाही ही नहीं चलने दी. यही नहीं, उस दिन सारी मानवीयता ताक पर रख दी गयी—एक विधायक के निधन पर शोक प्रस्ताव भी पारित नहीं किया जा सका.

अगले दो दिन भी यही सब हुआ. न शोक प्रस्ताव पारित हो सका और न ही शक्ति-परीक्षण. तीन दिन तक विधानसभा में जो कुछ हुआ वह तो शर्मनाक था ही, लेकिन इस बार का सांप्रदायिक दंगा भी कोई कम शर्मनाक नहीं था.

यों तो पूरे राष्ट्रीय परिदृश्य में आये दिन दंगे होने के समाचार प्राप्त होते हैं. किंतु हैदराबाद के दंगों का कुछ खास और अलग चरित्र है. सांप्रदायिकता यहां सिर्फ मुखौटा है और उसकी आड़ में राजनैतिक स्वार्थ पूरी तरह से सक्रिय होते हैं. यों ऐसा न्यूनाधिक रूप से हर कहीं होता है. किंतु हैदराबाद पूरी तरह से विशिष्ट है. दंगे यहां रोजमर्रा के जीवन में घुल मिल गये हैं. यह पहले से ही निश्चित होता है कि अमुक दिन दंगे होंगे. सरकार पुलिस और सीमा सुरक्षा बल आदि की पर्याप्त व्यवस्था करने की घोषणा करती है. फिर भी दंगे होते हैं.

दिनांक 9 सितंबर, रविवार को हुआ दंगा इसकी सबसे ताजा मिसाल है. हैदराबाद में बच्चे बच्चे को पता था कि इस दिन कुछ अवश्य होगा. और जो होगा, वह भास्कर राव के लिए फायदेमंद होगा. इस अर्थ में यह दंगा कतई सांप्रदायिक नहीं था. कम से कम इसकी शुरुआत तो पूरी तरह से राजनैतिक थी. भास्कर राव मंत्रिमंडल के अनुसार इन दंगों की जिम्मेदारी भाजपा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और इसीलिए प्रकारांतर से रामराव पर जाती है. किंतु यदि सामान्य बुद्धि से भी सोचें तो यह काम उनका नहीं हो सकता.

अब तक दंगों का क्षेत्र पुराना शहर रहा है. इस बार नये शहर, विशेषकर विधानसभा के निकटवर्ती क्षेत्र इसकी चपेट में आये. सामान्यतः गणेश विसर्जन का जुलूस आम जनता के लिए मेले का आनंद देता है. औरतें और बच्चे तक हजारों की संख्या में सड़क के दोनों ओर इकट्ठे होते हैं. यदि यह काम भाजपा या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का होता तो गणेश विसर्जन के बाद होता. क्योंकि जुलूस के दर्शक प्रायः हिंदू होते हैं और भाजपा या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, अपने जातिगत पक्षपात के कारण ही सही, उन्हें संकट में डालना हरगिज नहीं चाहते. दंगा दोपहर को ही शुरू हो गया जबकि जुलूस का आधा कार्यक्रम बाकी था.

यह काम मुसलमान मजहबपरस्तों का भी नहीं हो सकता क्योंकि शुरू की सारी तोड़फोड़, हिंदू बहुल क्षेत्र में हुई. यदि मात्र असामाजिक तत्त्वों की जिम्मेदारी कह कर बात खत्म की जाये तो प्रश्न उठता है कि वे किसके इशारे पर यह सब कर रहे थे? और इन दंगों का लाभ किसे मिल रहा था?

हैदराबाद के निवासी अच्छी तरह जानते हैं कि किस विधानसभा क्षेत्र में ऐसे तत्त्व अधिक संख्या में हैं जो पेशे से ही असामाजिक हैं. एकाध स्थानीय समाचारपत्रों के अनुसार तो तकनीकी शिक्षा के तत्कालीन राज्यमंत्री और भास्कर राव के एक प्रबल समर्थक पी. रामास्वामी को दंगों के वक्त लोगों को भड़काते हुए भी देखा गया.

जो भी हो, इन दंगों का चरित्र सांप्रदायिक न होकर राजनैतिक रहा. यों बाद में संप्रदायगत उन्माद इसमें जरूर घुल गया.

11 सितंबर को कर्फ्यू में तीन घंटे के लिए ढील दी गयी जिन्हें जरूरी खरीददारी करनी थी, वे कर रहे थे किंतु हुसैन सागर (गणेश विसर्जन के कारण जिसे ठेठ हिंदू लोग विनायक सागर भी कहने लगे हैं) से लेकर सिद्दंबर बाजार तक जैसे मेला उमड़ा हुआ था. लोग पिकनिक के मूड में नुकसान देखने निकले थे. बशीर बाग में, जहां खादी भंडार और टिबरेवाल ज्वेलर्स की दुकानें जलीं, तमाशबीनों की भीड़ थी. इस संवाददाता ने पाया कि मुख्यमंत्री भास्कर राव के इस कथन में तो पर्याप्त सचाई है कि एक संप्रदाय विशेष की ही अधिक दुकानें तोड़फोड़ का लक्ष्य बनीं किंतु पुलिस की निष्क्रियता पर सिवाय ताज्जुब के और क्या किया जा सकता है. ठीक आबिद रोड पर, पुलिस स्टेशन के नजदीक, एफ. डी. खान की दुकान के शटर का ताला तोड़ कर हजारों रुपये के कपड़ों की होली जलायी गयी, हालांकि पुलिस अधिकारी कई दिनों से घोषणाएं कर रहे थे कि पर्याप्त सुरक्षा व्यवस्था कर ली गयी है. ■

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशेष

कर्नाटक संगीत का विषादी स्वर

अब वे वफा की कीमत मांग रहे हैं

रामसेवक श्रीवास्तव

कर्नाटक का प्रतिनिधित्व करने वाले संसद सदस्य एफ. एम. खां (फैज मुहम्मद खां) ने भारतीय कांग्रेस के मुख्यालय दिल्ली में भूख हड़ताल की तो कांग्रेसी हल्कों में कुछ समय के लिए सनसनी फैल गयी. श्री खां उन युवा नेताओं में से एक हैं जो संजय गांधी के प्रबल समर्थक थे और श्री गुंडुराव के जमाने में बहुत तपे हुए थे. आज आंच कम हो गयी है तो शिकायत यह कि पार्टी में वफादार लोगों को नजरअंदाज करते हुए महत्व उन लोगों को दिया जाता रहा है जो दुर्दिन में श्रीमती गांधी का साथ छोड़ कर चले गये थे, लेकिन बाद में फिर पार्टी में वापस आ गये.उनकी शिकायत का विश्लेषण किया जाये तो अर्थ यह निकलेगा कि पार्टी में होने का जो लाभ वफादारों को मिलना चाहिए था, वह उन्हें न मिल कर उन लोगों को मिल रहा है जिनकी वफादारी खंडित रही है.

कांग्रेस के एक अत्यंत महत्वपूर्ण नेता ने तो पलट कर इस संवाददाता से ही पूछा कि क्या श्री खां की वफादारी यकीन के काबिल या अटूट है? उनके अनुसार एफ.एम.खां, गुंडूराव और उनके अनेक साथी देवराज अर्स (स्वर्गीय) के साथ थे. जब देवराज अर्स कांग्रेस से बाहर हुए तो ये सभी लोग उनके साथ हो गये. बाद में ये लोग इंदिरा कांग्रेस में वापस आये. जनवरी 80 में इन्हीं श्री खां ने दलबदल कराया और तब गुंडूराव के नेतृत्व में कर्नाटक में सरकार बनी. फिर श्री खां यह कैसे कह सकते हैं कि श्रीमती गांधी के प्रति उनकी वफादारी निरंतर बनी रही? उनके और गुंडूराव की वजह से कर्नाटक के कई प्रभावशाली नेता पार्टी से अलग हो गये. श्री बंगरप्पा, श्री रघुपति और श्री नजीर जैसे नेताओं ने रिश्ता तोड़ लिया. बाद में पार्टी में शामिल होने वालों में के.एच. पाटील (वर्तमान प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष), वी. बासवलिंगप्पा और डी. वी.कलमांकर के नाम महत्वपूर्ण हैं. इन लोगों ने श्री खां के कदम की आलोचना की और उच्चकमान से कहा कि वह पार्टी के हित में नहीं है.

वफा की कीमत मांगने वाले खां साहब ने बातचीत में मुझसे कहा, "हम श्रीमती गांधी के लिए जान देने को हमेशा तैयार रहते हैं.' मैंने कहा, 'संभव है कि बाद में आने वालों पर श्रीमती गांधी पूरा यकीन न करती हों इस लिए उन्हें बांधे रखने के लिए पद और प्रतिष्ठा दी. अगर आप सचमुच वफादार हैं तो आपको इस फैसले की तारीफ करनी चाहिए. फिर आपने यह मुद्दा क्यों उठाया.'

खां साहब छत की तरफ देखते रहे. कोई जवाब नहीं दिया. जवाब देते भी क्या?

श्री खां को जानने वाले दिल्ली के कुछ नेता उनकी भूख हड़ताल के दो कारण मानते हैं. पहला यह कि 'श्री खां के खिलाफ उच्चकमान को कई गंभीर आरोपपत्र मिले हैं. उनके विरुद्ध शीघ्र ही कदम उठाया जाने वाला था. इसके पहले कि कदम उठाया जाये उन्होंने एक शगूफा भूखहड़ताल के रूप में छोड़ दिया, ताकि ध्यान मूल मुद्दे से हटकर दूसरी तरफ चला जाये.'

दूसरा कारण यह है कि राजीव गांधी की कार्यशैली में खां साहब जैसे नेताओं की दिक्कतें लगातार बढ़ती जा रही थीं.

भारतीय कांग्रेस कमेटी के 'विचारमंच' विभाग के संयोजक प्रोफेसर जनार्दन द्विवेदी ने कहा, 'पार्टी में एक ऐसा वर्ग है जिसने सत्ता का भरपूर दुरुपयोग किया है. कर्नाटक में पार्टी की हार की जिम्मेदारी एफ.एम. खां जैसे लोगों की ही है. खां जैसे लोगों की चुनाव के ठीक पहले इस तरह की बयानबाजी का उद्देश्य कांग्रेस को ब्लैकमेल करना है. उन्हें शायद इसका अनुमान नहीं है कि श्रीमती गांधी के नेतृत्व में पार्टी को ब्लैकमेल नहीं किया जा सकता. राजीव जी चुनाव की तात्कालिक राजनीति तक सीमित न होकर उसके पार तक देखते हैं और कुछ ठोस और रचनात्मक करना चाहते हैं. खां जैसे नेताओं की कार्यशैली बिल्कुल दूसरे किस्म की है. उसके लिए राजीव जी की कार्यशाली में कोई जगह नहीं है.'

एक अन्य नेता का कहना था कि संजय जी बहुत अच्छे घुड़सवार थे. राजीव जी विमान चालक रह चुके हैं इसलिए उनके चिंतन और नजरिए में उस राजनैतिक संस्कृति के प्रति कोई लगाव नहीं है जो खां साहब जैसे नेताओं की पूंजी है. महासचिव के रूप में राजीव जी ने संगठन में छंटाई की जो शुरुआत की है उसे देखकर अनेक लोगों को यह खतरा सताने लगा है कि उनका भविष्य नहीं है.'

सुना तो यह भी गया था कि फीरोज शाह रोड पर स्थित 'दीवान श्री एपार्टमेंट' में खां साहब और उनके समर्थकों की एक बैठक भी हुई थी जिसमें उत्तरप्रदेश, गुजरात और मध्यप्रदेश के भी कुछ असंतुष्ट नेता मौजूद थे. उन्होंने श्री खां को समर्थन देने का वायदा किया और योजना यह बनी कि ठीक समय पर संगठित ढंग से कार्रवाई की जाये.

वित्तमंत्री प्रणव मुखर्जी ने श्रीमती गांधी से मुलाकात कराने का आश्वासन देकर खां साहब की भूखहड़ताल तो खत्म करा दी थी लेकिन 19 सितंबर तक उनकी मुलाकात श्रीमती गांधी से नहीं हो सकी. संभव है कि उच्च कमान इस असंतुष्ट वर्ग की ताकत का अंदाजा लगा रहा हो. हालांकि इंका महासचिव राजीव गांधी ने कह दिया कि खां साहब चाहें तो पार्टी छोड़ सकते हैं.

छपते-छपते

एक सूचना के अनुसार एफ. एम. खां को अनुशासनहीनता और पार्टी विरोधी काम करने के अपराध में बल से निष्कासित कर दिया गया है.

खां साहब बातचीत में बहुत सतर्क और सहमे-सहमे लग रहे थे. लगता है कि उन्हें अपने कदम की निरर्थकता का अहसास हो गया है. उन्होंने कहा, 'अखबार वालों ने लिखा है कि मेरी बैठक में संजय गांधी की तस्वीर है. देखिए न, अगर संजय जी के साथ मेरी तस्वीर है तो गफ्फार खां (सीमांत गांधी) के साथ भी तो हैं.

तस्वीरें तो श्रीमती गांधी और पंडित जवाहर लाल नेहरू की भी हैं. बैठक में दो दर्जन से अधिक छोटे-बड़े 'कप' भी करीने से सजा कर रखे हुए थे. देखने पर लगेगा कि खां-साहेब हाकी-फुटबाल आदि के बहुत अच्छे खिलाड़ी रहे होंगे. पूछने पर उन्होंने बताया .,"मैं किसान हूं और ये सारे कप बागबानी और फूलों की प्रतियोगिता में पुरस्कार मिले थे.'

उनके खिलाड़ी होने का भ्रम राजनीति में कुछ दूर तक चला. लेकिन अब वह भ्रम टूट गया है. अगर 10 दिनों तक वह श्रीमती गांधी से मिल पाने में असफल रहे हैं, तो आगे क्या उम्मीद की जाये.

उनके व्यक्तित्व का एक अंदाजा, उनसे हुई उस बातचीत से भी लग सकता है कि जिसके कुछ अंश अगले पृष्ठ पर प्रस्तुत हैं.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'मेनका की अब भी उतनी ही इज्जत है'

—एफ. एम. खान

□ पार्टी में वफादारों को नजरअंदाज किये जाने का अहसास कब हुआ?

दो साल से.

□ क्या कभी इंदिरा जी से बताया था?

हम तो पी. एम. को बताते रहते थे. दूसरों को भी बताते रहे, जो सोचते थे.

□ उन्होंने क्या जवाब दिया?

आश्वासन तो देते रहते थे. बोले, मिलते हैं, यह करते हैं. बात करते हैं....

□ अहसास दो साल पहले हुआ. बात इसी वक्त क्यों उठायी?

अब हम जायेंगे संसद के चुनाव के लिए. अब अंदर संघर्ष इतने हैं और हम ठीक से तैयार नहीं हैं तो इसमें चुनाव का नतीजा क्या होगा? हम तो पार्टी के सिपाही हैं. पार्टी को नुकसान हो रहा है तो हमारी तरफ से इशारा स्ट्रांगेस्ट वर्डस में दिये हैं.

□ क्या भूख हड़ताल की नोटिस दी थी?

नहीं, एक लेटर भेजा था मैडम को. देखा होगा, अखबार में . . प्राब्लम है न. लिखा था कि आफिस में फास्ट करने जा रहा हूं.

□ उस पर कोई प्रतिक्रिया मिली थी.

नहीं. हम, देखो जो बोलना था, एक्सप्रेस करना था, हम समझा नहीं सके. उनको भी कनविंस होना है. वह समझते हैं कि हम ओवर रिऐक्ट कर रहे हैं. जितना कि मैं खुलकर बोल सकता हूं, उतना तो नहीं बोलेंगे दूसरे लोग. उनको कल सीट चाहिए. . . ग्रुप पालिटिक्स.

□ पहले भी आपने एक बार...

मामला जब हमारी जानकारी में आ गया तो स्पीयरहैड किया. हंगरस्ट्राइक किया. 'बरुआ हटाओ' बोल के. रिक्वीजीशन मीटिंग किया बोल के. पूरा मोबिलाइजेशन, पूरे कंट्री में किये. तो वह लोग जब रिक्वेस्ट करते हैं...

□ उन लोगों ने आपसे क्या कहा?

इतना प्रेशर था एक मीटिंग बुलाने के लिए, तो हम बोले कि मीटिंग बुलाने से रंग अलग दे देंगे. ग्रुप बना लेंगे. . . इनसे मिल रहे हैं... यह कह रहे हैं. सब रकम की कहानी निकल ही जाती है.

□ भूख हड़ताल शुरू की तो प्रणव मुकर्जी ने क्या कहा?

नहीं, पहले मूप्पनार जी और एंटोनी जी आकर बात किये. हम बोले कि आपके हाथ में होने का कोई काम नहीं है. प्रेसिडेंड आफ द पार्टी को सॉल्व करना चाहिए. क्योंकि इसके आगे के सब सोर्सेज को एक्झास्ट कर दिये बोल के. और प्रेसिडेंट को भी बोल के एक्झास्ट कर दिये.

□ फिर क्या हुआ?

उसके बाद प्रणवजी आये.बोले, संडे को कोशिश करेंगे. . . नहीं तो दूसरे दिन. हम तो अरजेंट में नहीं हैं. जो हमारे दिल में था. . . एपराइज करना था कर दिया. सबसे बड़ी चीज कुछ है प्राब्लम. . . तो एश्योरेंस दिया और हमने फास्ट सस्पेंड किये.

□ कांग्रेस के सिद्धांतों में कितना यकीन करते हैं?

हम तो पूरा यकीन करते हैं.

□ कांग्रेसी नेता मांग पूरी न होने पर आमरण अनशन करते थे. क्या आप भी बात मानी न जाने पर वैसा करेंगे?

जब तक हम उनसे बात नहीं करते, तब तक कुछ नहीं कह सकते. उम्मीद तो पूरी करते हैं कि इसमें कुछ सुझाव निकलेगा. हमारे मन में भी कुछ उतने ही स्ट्रांग प्वाइंट हैं जो पार्टी के अच्छा होने के लिए कर रहे हैं. बुराई के लिए तो नहीं कर रहे हैं.

□ और कौन कौन लोग हैं आपके साथ?

मेरे साथ कोई नहीं है.

□ खबर तो थी कि 150 संसद सदस्य हैं.

हम तो बोले नहीं. न वह हमारे साथ हैं, न हम उनके साथ हैं. वे असंतुष्ट हैं. हम उनके प्राब्लम को हाईलाइट कर रहा हूं. इसलिए कि मैं कांग्रेस पार्लियामेंट्री पार्टी का ट्रेजरर हूं. निर्विरोध आया हूं.

□ महापात्रजी ने भी वक्तव्य दिया था. आप ही जैसा मुद्दा. क्या उनसे सहमत हैं?

वह एक जनरल सेक्रेटरी रह चुके हैं. इतने अपसेट हो गये हैं तो उसका क्या कारण है. वह भी एक जिम्मेदार पोस्ट पर बैठे थे पार्टी में. उसे चलाने में उनकी जानकारी है. उनकी बात नहीं पहुंच सकी. उन्हें ठीक से समझाया नहीं गया तो उन्होंने रिएक्ट किया.

□ उन्हें तो 'कारण बताओ' नोटिस मिल चुकी है?

जो शोकाज दिये हैं तो वह ठीक नहीं हैं. उनसे बुलाकर बात करना चाहिए था. क्या प्राब्लम है? पूछना चाहिए कि क्या जरूरत पड़ गयी अखबार में जाने की.

□ 77 में इमरजेंसी खत्म होने पर चुनाव के डर से बहुत से लोग पार्टी से भागे. इस वक्त छोटे पैमाने पर वही हो रहा है. क्या आप भी बाहर निकलने का बहाना ढूंढ़ रहे हैं?

वह जो महापात्र जी ने बयान दिया था. शायद वह जाने वाले नहीं हैं. मैंने ग्रीवांस उठाया उसके माने यह कि पार्टी में जो कमी वेसी है, उसे ठीक करो. हम सब लोग, जब किसी के आने की उम्मीद नहीं थी, तब काम किये हैं.

□ लेकिन आप लोग खुले ढंग से असंतोष व्यक्त कर रहे हैं. उससे पार्टी की छवि तो बिगड़ रही है?

इसी के लिए तो हम आवाज उठाए हैं. कोई तो जायेंगे नहीं. बाहर पार्टी में बोलने वाले हैं. बोले हैं और यहां आकर बोल रहे हैं. . .

□ लेकिन जैसे बोले हैं, उससे पार्टी का अनुशासन तो भंग होता है.

बोलेंगे तो एक रास्ता तो खुलेगा. असंतुष्ट जो हैं. बोलेंगे कि लीजिए हमारी यह प्राब्लम है. जब हम इतना बड़ा इशू बनाये. किसी को नहीं इनवाल्व किये. . हालांकि हम जरा और जोर से बोलते तो हिंदुस्तान में बहुत ज्यादा आवाज हो जाती.

□ संजय विचार मंच के बारे में क्या ख्याल है?

वह. . जरा यू.पी. में उनका चलता है.

□ कुछ लोगों का कहना है कि आपने यह कदम राजीवजी का विरोध करने के लिए उठाया क्योंकि आप संजयजी के बहुत करीब थे.

देखो, हम कहते हैं कि यह गलत है. राजीवजी का इससे क्या बिगड़ेगा. जब संजय जी थे तब भी हम इंदिराजी के थे. राजीवजी हैं तब भी हम इंदिरा के हैं.

□ मेनका गांधी से कब मुलाकात हुई थी?

हाल में तो नहीं हुई. साल दो साल पहले एक बार वह हैदराबाद में हवाई जहाज पर चढ़े थे, तब हुई थी.

□ मेनका के बारे में . . . खैर छोड़िए, नहीं पूछूंगा.

नहीं, पूछना हो तो पूछिए. बोल सकता हूं तो बोलूंगा. संजय जी की बीवी की, यानी मेनका की हम इज्जत करते हैं. इसलिए कि बुरे वक्त पर वह भी साथ खड़ी थीं.

□ लेकिन अब जब अलग हो गयी हैं तो?

मेरी तो इज्जत वही है जो आगे थी.

□ अगर वह कोई राजनैतिक, आर्थिक. मदद मांगे तो देंगे?

आर्थिक मदद तो दे नहीं सकते. राजनैतिक का सवाल ही नहीं पैदा होता.

□ दीवानश्री एपार्टमेंट में बैठक में क्या हुआ था ?

मैं तो न उस एपार्टमेंट में गया हूं, न उसको देखा है.

□ सुना था कि उसमें संजय विचार मंच के भी कुछ लोग थे. गुंडुराव भी थे.

नहीं. न देखा हूं. . न गया हूं, न कोई मीटिंग हुई है.

□ देखा नहीं, गये नहीं तो कैसे इतने यकीन से कह सकते हैं कि मीटिंग नहीं हुई?

इसलिए कि वहां जो रहते हैं. . जब यहां आते हैं तो जब मीटिंग होती है तो हम भी शामिल होते हैं. शामिल नहीं हुए तो कह सकता हूं कि मीटिंग नहीं हुई.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राष्ट्रीय छात्र संगठन (इंका) का सम्मेलन

जो एक वक्त भूखे नहीं रह सकते वे बलिदान क्या करेंगे

—नागपुर से रज्जन त्रिवेदी की रपट

शहीद शंकरराव महाल्ले नगर को बड़े शान से सजाया गया था. कई अलग-अलग शामियाने भी ताने गये थे, जो खूबसूरत गोलाई के कारण अलग दिखायी पड़ते थे. शहर की सड़कों पर युवाओं के समूह रह-रह कर राजीव गांधी जिंदाबाद, इंदिरा गांधी जिंदाबाद, एन.एस.यू. आई. जिंदाबाद के नारे जोशखरोश के साथ लगाये जा रहे थे. बगल में लटकते थैले, चूड़ीदार पायजामे, लंबे कुर्त्ते नेताई अंदाज की पहचान करा रहे थे. हर चौक, हर नुक्कड़, हर छोटी-बड़ी सड़क और गली में सजावट और गहमागहमी के कारण पूरा शहर गुलजार था. न जाने कितने स्वागत द्वार, तोरण, झंडे, शामियाने अपने अतिथियों के स्वागत में पलक पांवड़े बिछाये हुए थे. दो दिवसीय अधिवेशन में करीब 25 हजार प्रतिनिधियों के आने की उम्मीद की गयी थी, लेकिन प्रतिनिधि करीब 50 हजार आ गये. आवास, भोजन, परिवहन की व्यवस्था थोड़ी देर के लिए अस्तव्यस्त हो गयी.

महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री वसंतदादा पाटील के स्वागत भाषण के बाद सांसद राजीव गांधी ने राष्ट्रीय विद्यार्थी संघ के अधिवेशन का उद्घाटन ज्योति प्रज्ज्वलित करके किया. राजीव गांधी ने अपने भाषण के माध्यम से इंका के चुनाव प्रचार के लिए और देश के लिए काम करने का आग्रह किया, लगन और तेजी के साथ जुट कर. सफलताओं की कामना की. कहा: 'आपके सहयोग का हमें पूरी तरह से अहसास है और आपके सहयोग से ही आगामी चुनाव में बड़ी सफलता मिलेगी.' विपक्षी पार्टियों पर चोट करते हुए उन्होंने आगे कहा कि देश का यह दुर्भाग्य है कि उसके पास समझदार, सहयोगी और सुदृढ़ विपक्ष का अभाव है. विरोधी दलों के पास सिवा इंदिरा जी को हटाने के कोई कार्यक्रम नहीं है. वे राष्ट्रीय एकता को, देश की भलाई को कहीं महत्त्व नहीं देते. देश की स्थिति में कमियां हैं. व्यवस्था में खामियां हैं और पुराने ढांचे को बदलने की जरूरत है.

उद्घाटन सत्र समाप्त होते ही सभा मंडप की फिजां बदल गयी. डेढ़ बज चुका था. प्रतिनिधि 'खाना दो, खाना दो' के नारे लगाने लगे. लड़कों का सैलाब भोजन मंडप में घुस गया. वे प्लेटें फोड़ते, गिलास फेंकते, ब्रेड लेकर भागते नजर आ रहे थे.

राष्ट्रीय विद्यार्थी संघ के अध्यक्ष श्री चेन्नी थला जब अंग्रेजी में भाषण करने लगे तो हिंदी में भाषण करने की आवाजें कसी गयी और अधिवेशन का माहौल बिगड़ गया. कुछ मनचले उद्दंड लड़कों ने अपनी तरह-तरह की शरारतों का जायका शहर को बड़ी ईमानदारी से मुहैया करवाया. वे केले वाले, फल वाले, हथठेलों को घेर लेते और छीनाझपटी शुरू कर देते. ठेले वालों पर जब आ पड़ी तो लोगों ने भी प्रतिकार करना शुरू कर दिया. उनकी कहीं-कहीं तो जम कर ठुकाई कर दी गयी.

फिर एक नया दौर शुरू हुआ; लड़कियों की छेड़छाड़ का, ब्लाउज फाड़ने का. लोगों ने इन हरकतों का जमकर प्रतिकार किया. वर्धा रोड प्रगति हाल में रातोंरात झगड़े के कारण ये प्रतिनिधि हटाये गये. आमदार निवास में शराब और लड़कियों की व्यवस्था न होने की शिकायत की गयी और खिड़कियों के कांच तोड़ दिये गये. बहुत से लड़के तो शहर के लालबत्ती इलाके में पहुंच गये. एक-एक वेश्या के यहां दस-दस लड़के घुस गये. वे भी घबरा गयीं. कुछ पुलिस वालों की तरफ दौड़ीं, कुछ डाक्टरों की तरफ. कई लड़के शरीफ घरों में भी घुसने की कोशिश करने लगे, तो लोगों ने उनकी पिटाई भी की. सीतावडी और धरमपेट क्षेत्र की दुकानें भी बंद हो गयीं. स्टेशन पर उनकी विदाई के समय तब और सनसनी फैल गयी जब इन प्रतिनिधियों के पास चोरी का माल पुलिस ने बरामद किया.

बहरहाल, पहले ही दिन अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास किया गया, जिसमें कहा गया कि इंका के महामंत्री राजीव गांधी समाजवादी-धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र की स्थापना में देश के युवकों, छात्रों को अपना नेतृत्व प्रदान करें. दूसरे प्रस्ताव में विपक्ष की विध्वंसक गतिविधियों पर चिंता व्यक्त की गयी और तीसरे प्रस्ताव में भारत की विदेश नीति का समर्थन. दूसरे दिन, करीब 11.35 बजे, श्रीमती गांधी सभा स्थल पर पहुंचीं. सफेद साड़ी में उनका आकर्षक व्यक्तित्व और भव्य लग रहा था. उनका कहना था कांग्रेस ही लोकशाही देश में लायी और उसे पाला-पोसा तथा बढ़ाया है. कांग्रेस न होती तो देश एक न होती? बड़ी कुर्बानियों के बाद देश को लोकतंत्र मिला है. कल जो लोकशाही का विरोध किया करते थे वे आज विपक्ष में बैठ कर लोकशाही की बात कर रहे हैं. देश को आत्मनिर्भर बनाना है. उसकी जवाबदारी युवकों पर है. युवक ही आजादी की लड़ाई में अगुवा थे. उन्होंने आवेश में आगे कहा: 'उस समय हम लोगों से एक ही प्रश्न पूछा जाता था, कि आप लोग सब कुछ छोड़ने को तैयार हैं क्या? त्याग की इस कहानी को एन.एस.यू.आई के कार्यकर्त्ताओं को गांव-गांव पहुंचाना है.' उन्होंने युवकों की तोड़-फोड़ वाली आदत को आड़े हाथों लेते हुए कहा कि भोजन व्यवस्था को नष्ट करके कार्यकर्त्ताओं ने अच्छा काम नहीं किया. जो युवक एक दिन बिना भोजन के नहीं रह सकते वे त्याग-बलिदान क्या कर सकेंगे? अनुमान है कि सम्मेलन पर 22 लाख रु. खर्च हुए. संगठन के अध्यक्ष चेनीथला के अनुसार पार्टी के नेतृत्व ने विभिन्न घटनाओं की जांच का आदेश दे दिया है. ■

टूटी कुर्सियां: भोजन के पंडाल में छात्रों की हुड़दंग के बाद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अहं ब्रह्मास्मि में विश्वास करने वाले युवक

राष्ट्रीय छात्र संगठन (इं) के नागपुर अधिवेशन पर बेबाक टिप्पणी

योगेशचंद्र हालन
कैरियर और कंपिटीशन टाइम्स के संपादक

लग रहा है कि चुनाव दरवाजे तक आ ही पहुंचे हैं. संकेत हैं वे अधिवेशन जो समाज के विभिन्न वर्गों को संगठित करने के लिए आयोजित किये जा रहे हैं. लगभग एक ही साथ दो अधिवेशन पिछले सप्ताह हुए—एक बंगलूर में महिला कांग्रेस का और दूसरा, नागपुर में राष्ट्रीय विद्यार्थी संघ (नेशनल स्टूडेंट्स यूनियन आफ इंडिया) का. ये दोनों कांग्रेस (इं) के अंग हैं और चुनाव के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं. परंतु राष्ट्रीय विद्यार्थी संघ के अधिवेशन का कितना लाभ सत्ता दल को होगा, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है.

60,000 विद्यार्थियों का विशाल जमघट 12-13 सितंबर को नागपुर में हुआ, जिसमें भारत के विभिन्न राज्यों से आये प्रतिनिधियों ने भाग लिया. उद्देश्य था विद्यार्थियों की एक ऐसी सेना तैयार की जाये जो कांग्रेस (इं) के चुनाव कार्यक्रम को घर-घर तक ले जाये. इस दृष्टि से उनको परिचित कराना था देश के शीर्ष नेताओं से, उनको शिक्षा देनी थी कांग्रेस संस्कृति की और उनको अनुशासित करना था एक प्रबल संगठन बनाने के लिए. शायद कांग्रेस (इं) के दिमाग में नक्शा था राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का, या साम्यवादी दल का. इसी नक्शे को लेकर कांग्रेस ने विद्यार्थी वर्ग को प्रभावित करने के लिए राष्ट्रीय विद्यार्थी संघ की स्थापना की. आशा थी कि सत्ता में होने के कारण कांग्रेस अधिसंख्य विद्यार्थियों को इस संघ में सम्मिलित कर लेगी और महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में उसकी धाक जम जायेगी.

अपना सिक्का जमाने के लिए राष्ट्रीय विद्यार्थी संघ का अधिवेशन नागपुर में आयोजित किया गया. इसको कितना महत्त्व दिया गया, इसका पता चलता है इस बात से कि राजीव गांधी और इंदिरा गांधी दोनों ने ही इस अधिवेशन में आये विद्यार्थियों को संबोधित किया. यह बात महत्त्वहीन है कि विद्यार्थियों ने उनको सुना कि नहीं.

अधिवेशन तो समाप्त हो गया और सब विद्यार्थी अपने घर लौट गये—साबुत या टूटे हाथ-पैर लेकर. नागपुर भी, जिसने देख लिया जहन्नुम क्या होता है, सामान्य होता जा रहा है और नगरवासी सब कुछ भूल भी जायेंगे, कुछ सप्ताह में. परंतु जो कुछ हुआ उस पर सोचे बिना उसे भुला देना रेत में सिर छुपाना होगा. इस पर यदि विस्तृत वाद-विवाद नहीं हुआ तो अगला अधिवेशन शायद दूसरे महायुद्ध से भी बुरा हो. 1982 में बंगलूर में हुए युथ कांग्रेस के अधिवेशन को इसी प्रकार भुला दिया गया था. इसलिए 1984 के नागपुर अधिवेशन ने उससे सौ गुना कहर ढाया. 1986 में यदि यह अधिवेशन हुआ तो शायद उस शहर की जनता हफ्ते भर के लिए कहीं और चली जायेगी.

समस्या की गहराई समझने के लिए यह देखना आवश्यक है कि जो कुछ 10 और 15 सितंबर के बीच गुजरा उसकी मुख्य विशेषता क्या थी. सबसे बड़ी विशेषता तो यह थी कि विद्यार्थियों के दल आपस में ही लड़ मरे. आगरा तथा दिल्ली के विद्यार्थियों में हुआ झगड़ा तो सबसे गंभीर था, क्योंकि इसमें पिस्तौल तथा देशी बमों का प्रयोग खुल कर हुआ. यों छोटी-मोटी झड़पों, रोटी या लड़की को लेकर, होती रहती थीं. सवाल है जब ये स्वयं ही आपस में लड़ते हैं, वह भी छोटी-छोटी बातों पर, तो नौकरी, सत्ता या पैसे से संबंधित मसलों पर कैसे एकजुट हो कर काम कर सकेंगे?

दूसरे, राष्ट्रीय विद्यार्थी संघ के सदस्य किसी नेता को नहीं पहचानते. 'अहं ब्रह्मास्मि' में विश्वास रखते हुए वे स्वयं को ही महत्व देते हैं. जब राजीव गांधी बोल रहे थे तो वे चिल्ला रहे : थे 'हमें खाना दो.' जब इंदिरा गांधी भाषण कर रही थीं तो काफी विद्यार्थी उठ कर चले गये और जो बचे वे आपस में बात करते रहे. रेल में सफर करते हुए भी मध्यप्रदेश के एक मंत्री की दाढ़ी खींच डाली, एक राज्यमंत्री की टोपी फेंक दी और एक महिला मंत्री पर अश्लील फब्तियां कसीं. उसके पी.ए. ने जब विरोध किया तो उसको पीट दिया. यह सब सुन कर 75 मंत्रियों और विधायकों ने अपने यात्रा कार्यक्रम रद्द कर दिये. सवाल है कि जब एक राजनैतिक दल का सशक्त वर्ग अपने नेताओं को, जिनसे उसको प्रत्यक्ष लाभ मिलते हैं, इस तरह का आदर देता है तो वह जनता से किस प्रकार का व्यवहार करेगा?

युवा वर्ग समाज का एक शक्तिशाली वर्ग होता है, जो समाज की बुराइयों को दूर करके एक नये समाज का निर्माण करता है. अनेक उदाहरण हैं जब युवा वर्ग ने आगे आ कर शोषण और भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठायी और सरकार को बदल दिया. पाकिस्तान में विद्यार्थी वर्ग ने याकूब खान का तख्ता पलटा. बंगलादेश में यह वर्ग ही दमन का सामना करने को तैयार हुआ और ईरान में भी युवा वर्ग ने पहले शाह से मोर्चा लिया और अब खुमैनी से लड़ रहा है. क्या भारत के युवा वर्ग में ऐसी क्षमता है? क्या उस पर नये समाज के निर्माण का उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है? मैं तो सोचता था कि ऐसी संभावना है, पर नागपुर अधिवेशन के बाद मुझे इस पर फिर से सोचना होगा!

जो होना था सो हो गया. पर क्या इससे छुटकारा नहीं है? है, अवश्य है. नागपुर और बेतूल की जनता ने साफ बता दिया कि यदि सरकार ने छात्रों को नहीं संभाला तो लोग इनको स्वयं ठीक करेंगे. नागपुर में दुकानें बंद कर दी गयीं, स्कूल-कालिजों में पढ़ाई नहीं हुई और जब विद्यार्थी अति पर उतर आये तो उनको घेर कर पीटा भी. बेतूल में भी विद्यार्थियों को खदेड़ कर ट्रेन के डिब्बों में वापस भर दिया गया. कई स्थानों पर तो इतनी पिटाई की गयी कि विद्यार्थियों की जान पर बन आयी.

भारत में अब भी लोकतंत्र के बचे रहने की आशा है. यदि राजनैतिक दल समय रहते सजग नहीं हुए तो वे स्वयं इस राक्षसी वृत्ति के शिकार हो जायेंगे. मेरी वाल्स्टनक्राफ्ट शैली की भयावह कहानी के चरित्र फ्रैंकेस्टीन के समान यह राक्षस भी अपने जन्मदाता को नष्ट कर दे सकता है. ■

संक्षिप्त विज्ञापन

शिक्षा संबंधी

कहानी-कला, लेख-रचना, प्रैक्टिकल इंगलिश, पत्रकारिता, पत्रिका-संचालन और पटकथा व टी वी लेखन का घर बैठे पत्राचार द्वारा अध्ययन करें. अपने विषय की विवरणी मंगाइये. कहानी-लेखन महाविद्यालय, रजि. (द), अम्बाला छावनी-133001.

अपनी अंग्रेजी सुधारें, हमारे 'अच्छी अंग्रेजी' पत्राचार पाठ्यक्रम में प्रवेश लें. विवरणी हेतु लिखें. इंस्टीट्यूट आफ़ जर्नलिज्म (द), पोस्ट बाक्स 3583, नयी दिल्ली-110024.

हमारे पत्राचार पाठ्यक्रम से आप पत्रकारिता का पूरा प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं. विवरणी मंगाइये. पत्रकारिता महाविद्यालय (द), जी-75, लाजपतनगर-1, नयी दिल्ली-110024.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंजाब

फिर से जहर घुलने लगा है

घटनास्थल से लौटकर शम्मी सरीन

बुधवार 12 सितंबर. सांय 6.10 बजे अमृतसर के मुख्य बस स्टैंड से पंजाब रोडवेज की बस (नंबर पी. जे. जी 4012) सवारियां लेकर पठानकोट के लिए रवाना होती है. एक घंटे का सफर तय करने के बाद यह बस बटाला रुकती है. यहां पर कुछ सवारियां उतर जाती हैं. बहुत सी नयी सवारियां उनकी जगह ले लेती हैं. खचाखच भर जाने के बाद बस धारीवाल की ओर बढ़ती है. साढ़े सात बज चुके हैं. चारों ओर अंधेरा छा गया है. आसपास के गांवों में रोशनियां जल उठी हैं. ठंडी ठंडी हवा से कुछ यात्रियों की आंखें अलसा रही हैं. लगभग पंद्रह मिनट के बाद सतकोहा और नौशहरा माझासिंह के बीच स्थित उदोवल गांव को लांघते ही बस में आतंक फैल जाता है. अचानक एक सिख युवक ड्राइवर की कनपटी पर पिस्तौल रख देता है. उसके दूसरे दो साथी भी यात्रियों पर पिस्तौलें तान लेते हैं. "कोई एक इंच भी हिला तो खत्म कर दिया, जायेगा." एक युवक आदेश देता है. ड्राइवर पर पिस्तौल ताने खड़ा युवक कड़कता है: 'बस का अपहरण कर लिया गया है.' वह ड्राइवर से मुखातिब होता है, 'इस मुख्य सड़क से बायीं ओर जाते तंग रास्ते की तरफ मोड़ो.' विवश ड्राइवर युवक के कहने के अनुसार छीना घुम्मन और कुंजरपुल गांवों को जाती छोटी सड़क पर बस मोड़ देता है. मुख्य सड़क से उतरते ही बस की बत्तियां बुझवा दी जाती हैं.

लगभग 600 गज आगे बढ़ने पर बस को एक उजाड़ और सुनसान जगह पर रोक लिया जाता है. पास ही गन्ने के खेत में हलचल होती है. पगड़ियों से मुंह छिपाये छह अन्य सिख युवक प्रकट हो जाते हैं. बस के अंदर खड़े आतंकवादी युवक औरतों और सिख यात्रियों को बस से नीचे उतर कर पिछली ओर जाने का आदेश देते हैं. इस बीच बस में रह गये दूसरे यात्रियों को गालियां देकर अपना कीमती सामान उनके हवाले कर देने के लिए कहा जाता है. उनसे 'खालिस्तान जिंदाबाद' तथा 'भिंडरांवाले जिंदाबाद' के नारे लगवाये जाते हैं. इन यात्रियों से समान छीन लेने के बाद ड्राइवर की सीट के पीछे बैठे एक बुजुर्ग यात्री डा. शांतिस्वरूप सूद को तीन आतंकवादी घसीट कर नीचे उतारने की चेष्टा करते हैं. डाक्टर गिड़गिड़ाता है. अपनी जान की भीख मांगता है. उन्हें अपना सब कुछ ले लेने की विनती करता है. वह 10 अक्तूबर को होने जा रही अपनी बेटी की शादी का वास्ता देता है लेकिन उस की एक भी नहीं सुनी जाती. उसे बस की सीढ़ियां में ही गोलियां मार दी जाती है. छह बेटियों का पिता ढेर कर दिया जाता है. सन्नाटे को चीरती गोलियां डाक्टर की आवाज को दबा देती हैं.

अंदर बैठे दूसरे यात्री सुन्न हो जाते हैं. अब जिंदगी और मौत के बीच फासला नहीं रहा. किसी में हिम्मत नहीं है कि कोई उठ कर मौत का आलिंगन करे. खून पानी हो गया है और बदन मिट्टी. मस्तिष्क से सोच और दिल से धड़कन गायब है. इन बचेखुचे यात्रियों से आतंकवादी पिस्तौल की नोंक पर उनका नाम, पता तथा व्यवसाय पूछते हैं. यह इत्मीनान हो जाने पर कि कौन किस समुदाय से संबंधित है एक एक करके बलवंत राय, यशपाल, सृष्टि कुमार, कृष्णकिशोर नंदा और चरणजीत सिंह राजपूत को भी मार दिया जाता है. देखते ही देखते आठ परिवार उजड़ जाते हैं. मांगें सूनी हो जाती है. सहारे छिन जाते हैं. सौभाग्यवश दो यात्री गंभीर रूप से घायल होकर भी बच जाते है. कुछ अपने को हरिजन या सिख स्टूडैंट फेडरेशन का सदस्य बता कर बचा लेते हैं. लगभग साढ़े आठ बजे यह भयावह नाटक खत्म हो जाता है. जब नौ उग्रवादी भाग निकलने में सफल हो जाते हैं.

यह विवरण था ओंकार राणा का जिस ने अपनी जिंदगी सिख छात्र संघ का सदस्य बता कर बचायी थी. और उधर इसी काली रात. ठीक साढ़े आठ बजे. जालंधर के एक सिनेमा हाल में शाम के मध्यांतर होता है. दर्शकों की अच्छी खासी भीड़ चायपान के या ताजी हवा के लिए बाहर जाती है. तभी एक जोरदार धमाका होता है. भगदड़ मच जाती है. लोग इधर-उधर भागते हैं. कइयों के हाथ पांव कट जाते है. कुछ लोग सख्त घायल होकर गिर जाते हैं. क्षण भर में एक खुशगवार माहौल चीत्कार और हाहाकार में बदल जाता है. गंभीर रूप से घायल बाइस लोगों को अस्पताल पहुंचाया जाता है. एक घायल आदमी दम तोड़ देता है. एक ही वक्त पर दो अलग अलग जगह घटी ये बदकिस्मत घटनाएं प्रदेश में मुश्किल से आहिस्ता आहिस्ता सहज हो रहे वातावरण में फिर से दहशत, तनाव और क्षोभ पनपा जाती हैं.

उपरोक्त वारदातों के बाद ऐसा लगने लगा है कि पंजाब में हिंसा और आतंकवाद का दूसरा दौर शुरू हो गया है. सैनिक कार्रवाई के बाद धीरे-धीरे कायम हुआ अमन-चैन एक ही शाम में धराशायी कर दिया गया है. फिर एक बार उग्रवादी शक्तियां सिर उठाने लगी हैं. वैसे भी किसी को इस बात का भ्रम नहीं था कि 'ब्लू स्टार' आपरेशन और उसके बाद चले छानबीन और धरपकड़ के अभियान से राज्य में आतंकवाद पूरे तौर पर नष्ट हो जायेगा. फिर भी आशंका नहीं थी कि राज्य भर में सेना की मौजूदगी के बावजूद बेकसूर और निहत्थे लोगों को चुनचुन कर मारने के जघन्य अपराध को फिर दोहराया जायेगा.

कुछ लोगों का कहना है कि 10 सितंबर

गुरदासपुर के पास आतंकवादियों की गोलियों का शिकार (चित्र 'ट्रिब्यून' से साभार)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को जालंधर से प्रकाशित पंजाबी पत्र 'अजीत' में भिंडरांवाले की मृतक शरीर की छपी तस्वीर की प्रक्रिया में ऐसा हुआ है. कुछ लोग इसे अमृतसर में सैनिक कार्रवाई का बदला लेना की कार्रवाई बताते हैं. अगर वास्तव में ऐसा है तो इसे महज बदहवास बर्बरता ही कहा जायेगा. लेकिन लगता है ऐसा है नहीं, इसके पीछे कोई और मकसद है. आतंकवादी संभवत: सांप्रदायिक हत्याओं से किसी बड़े लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं. वे शायद खालिस्तानी ख्वाब को हकीकत में बदलना देखना चाहते हैं. आज सरकार को इस कटु सत्य को मानना होगा कि अलगाववादी मुहिम नारों के शोर से आगे बढ़ चुकी है.

पंजाब के गांवों में कुछ ऐसा माहौल है कि आज सिख समाज का प्रत्येक सदस्य स्वर्ण मंदिर में आतंकवादियों को खदेड़ने के लिए सेना के इस्तेमाल से क्षुब्ध है. यद्यपि हत्यारों और तोड़-फोड़ करने वाले तत्वों को गांवों में अपने संप्रदाय के लोगों का सक्रिय समर्थन तथा संरक्षण प्राप्त नहीं है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं लेना चाहिए कि ग्रामीणों में आतंकवादी लोगों के प्रति सहानुभूति का अभाव है, बल्कि उन्हें तो फौज की गश्ती टुकड़ी का डर रहता है.

आज पंजाब के अधिसंख्य लोग यही चाहते हैं कि तनाव और आतंक का मौजूदा दौर समाप्त हो लेकिन यह बात खालिस्तान समर्थक लोगों के बारे में नहीं कही जा सकती, जिनकी गिनती दिन प्रतिदिन बढ़ रही है. यह बात भी लगभग साफ है कि आतंकवाद में विश्वास रखने वाले लोगों की समझौते में कोई रुचि नहीं है. वे तो हिंसा में यकीन रखते हैं. इसी लिए वे हिंसात्मक कार्रवाइयों से पंजाब समस्या को उलझाये रखना चाहते हैं. अराजकता पैदा करना चाहते हैं क्योंकि उनका मत है कि अराजकता से ही उनके पृथकतावादी लक्ष्य पूरे हो सकेंगे. यह कहना गलत न होगा कि किसी हद तक वे सफल भी हुए हैं. उन्होंने ऐसे हालात पैदा किये जिनसे बहुत से गैर सिख लोगों ने पंजाब छोड़ने का फैसला किया. इसमें संदेह नहीं कि पंजाब के और बहुत से शांतिप्रिय लोग भी इस प्रदेश को छोड़ने पर विवश होंगे. इसके साथ ही पंजाब के वे लोग एक बार फिर असुरक्षित महसूस करेंगे जो सेना को अपनी सुरक्षा की गारंटी समझने लगे थे. इन हिंसात्मक वारदातों का दूरगामी प्रभाव पंजाब के उद्योग और व्यापार पर भी पड़ेगा. वे लोग जिन्होंने सैनिक कार्रवाई के बाद अपने उद्योग को कहीं अन्यत्र ले जाने के लिए बनाये गये मन को बदल लिया था अब फिर सोचने पर मजबूर होंगे कि उन्हें अपने कारोबार को बिधिवत चलाने के लिए ऐसे स्थान की तलाश करनी चाहिए, जहां शांति हो, सुरक्षा हो, सम्मान हो. ■

रांची की मानसिक आरोग्यशाला

बिहार

रांची का पागलखाना

पागल रोगी, या अधिकारी?

स्वाधीनता संग्राम के दौरान छोटा नागपुर आंदोलन के केंद्र बने ऐतिहासिक नगर रांची ने पिछले दिनों एक और इतिहास बनाया. वह था 5 सितंबर को रांची से 10 किलोमीटर की दूरी पर स्थित कांके के मानसिक आरोग्यशाला से पागलों का पलायन. हालांकि अस्पताल के अधिकारी इसका कारण अराजपत्रित कर्मचारियों की हड़ताल मानते हैं लेकिन आम और अप्रतिबद्ध लोगों के अनुसार 'पागलों' में इस आक्रोश का कारण अस्पताल की दुर्व्यवस्था है. फिलहाल, सरकार ने अस्पताल के अधीक्षक डा. दुर्गा भगत को तबादला न होने तक तत्काल छुट्टी पर चले जाने का आदेश दे दिया है. बावजूद इसके समस्या की गंभीरता अपनी जगह अभी भी बनी हुई है. कांके की इस आरोग्यशाला (देखें दिनमान 27 मई–2 जून) पर रांची से प्रस्तुत है उपेंद्र-प्रसाद सिंह की रपट :

"चाचा नेहरू जिंदाबाद", "इंकलाब जिंदाबाद," "डाक्टर भगत मुर्दाबाद." ये नारे किसी सभा में नहीं लगाये जा रहे थे. 5 सितंबर के प्रात: करीब पांच सौ मानसिक रोगी रांची मानसिक आरोग्यशाला का गेट तोड़ कांके की सड़कों पर झुंड के झुंड ये नारे लगाते घूम रहे थे. इनमें से कुछेक ने अपने कंबल पांच-दस रुपये में स्थानीय लोगों को बेच घर जाने की तैयारी भी कर ली थी. एक रोगी सड़क पर जाते टैंकर पर चढ़ गया. ये सारी घटनाएं कांके निवासियों के बीच न तो आतंक और न आश्चर्य ही फैला सकीं, क्योंकि कांके के लोग जानते हैं कि अस्पताल के अधीक्षक डा. दुर्गा भगत इन रोगियों को अपने घर के कामों के लिए अक्सर ले जाया करते थे.

कांके रांची से दस किलोमीटर दूर एक कस्बा है. यहां के लोग एक साथ सैकड़ों की संख्या में मानसिक रोगियों को देखने के लिए अभ्यस्त हो चुके हैं. दो किलोमीटर की परिधि में यहां तीन मानसिक आरोग्यशालाएं हैं जहां भारत के हर कोने से आये करीब तीन हजार रोगियों का इलाज होता है. रोजाना ही बाहर से सैकड़ों मानसिक रोगी यहां आते जाते रहते हैं.

5 सितंबर की घटना अपने आप में तथा यहां के लोगों के लिए बिल्कुल नयी बात थी. इस घटना के कारणों पर दो विचार उभर कर आये हैं. इस की ऊंची दीवार को कूद कर पार कर पाना असंभव है. अधिकारियों का कहना है कि हड़ताली कर्मचारियों ने इन रोगियों को गेट खोल कर भगा दिया. किंतु हड़ताली कर्मचारियों के सचिव टी.के. सिंह का कहना है कि 4 सितंबर को रोगियों को भोजन तथा पानी नहीं दिया गया, अंतत: 5 तारीख की सुबह भूख से बेहाल रोगी दरवाजा तोड़

फोटोहीन पहचानपत्र (दोनों चित्र: किसलय)

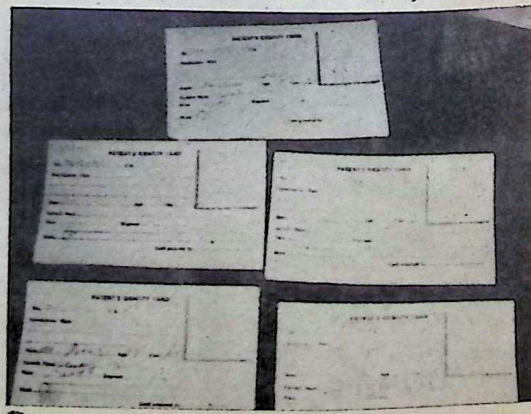

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाहर निकले थे. कुछ लोगों का यह भी मानना है कि 4 सितंबर की रात को कुछ असामाजिक तत्त्व दीवार फांद कर महिला वर्ड में घुस गये थे.

इन सारी घटनाओं से अधिकारियों की लापरवाही पर प्रकाश पड़ता है. हड़ताल के दिन कोई भी अधिकारी अस्पताल में नहीं था. सुबह 6 बजे रोगी दरवाजा तोड़ चुके थे जबकि पुलिस को सूचना 9 बजे दी गयी. बताया जाता है कि न तो रोगियों का कोई रजिस्टर है और न ही उनका फोटोयुक्त परिचयपत्र. हर पहचानपत्र पर फोटो चिपकाने की व्यवस्था है किंतु रोगियों से पैसा वसूल करने के बाद भी आज तक फोटो नहीं चिपकाये गये. सबसे ताज्जुब की बात यह है कि रोगियों की कुल संख्या का किसी भी अधिकारी को पता नहीं है.

इस आरोग्यशाला में दो वार्डों को बहुत सुंदर ढंग से बनाया गया है. डा. दुर्गा भगत किसी भी रोगी को भर्ती करने के पहले सात सौ रुपये प्रति रोगी लेते हैं. अभिभावकों को सुंदर ढंग से बनाये गये वार्डों को दिखा कर पैसा वसूल किया जाता है और बाद में उन्हें नर्क में डाल दिया जाता है. 1972 में कुल 73 रोगी इस आरोग्यशाला में मरे किंतु यह दर अप्रत्याशित रूप से बाद के वर्षों में बढ़ी. 1973 में 334 रोगी मरे. इस की जांच के लिए राज्य सरकार ने स्व. डा. डेविस की अध्यक्षता में एक जांच आयोग का गठन किया. इस जांच आयोग ने अपनी रपटों में इस मृत्यु दर में बढ़ोत्तरी के लिए डा. भगत को जिम्मेदार पाया.

बताया जाता है डा. भगत स्व. कार्तिक उरांव (भू. मंत्री) के निकट होने के कारण अपने को बचाने में समर्थ रहे. स्वास्थ्य कमिश्नर ने अब तक उनको छह दफा कार्यमुक्त करने का आदेश दिया किंतु वे ऊंची पहुंच वाले डा. भगत का बाल बांका न कर पाये. भगत (जो अगले वर्ष फरवरी में अवकाश ग्रहण करने वाले हैं) कई बार कह चुके हैं "मानसिक रोगी समाज पर बोझ हैं, बेहतर है कि वे मर ही जायें." इस वर्ष रांची जिला के उपायुक्त मदनमोहन झा ने भी एक जांच समिति बनायी. किंतु डा. भगत ने उसके साथ सहयोग नहीं किया. हाल की घटनाओं के बाद अतिरिक्त स्वास्थ्य सचिव (बिहार) डा. महाबीर दास को मौके पर जाने को कहा गया है.

दुर्व्यवस्था का यह आलम है कि 5 सितंबर को भागे रोगियों के बारे में यह प्रचार किया गया कि उन्हें लाने वालों को 'उचित पुरस्कार' मिलेगा. इस उचित पुरस्कार ने कुछ ऐसे व्यक्तियों को भी अंदर डलवा दिया जो रोगी नहीं हैं. ■

इंका में खयाली एकता की मुश्किलें

पटना से वेदप्रकाश वाजपेयी

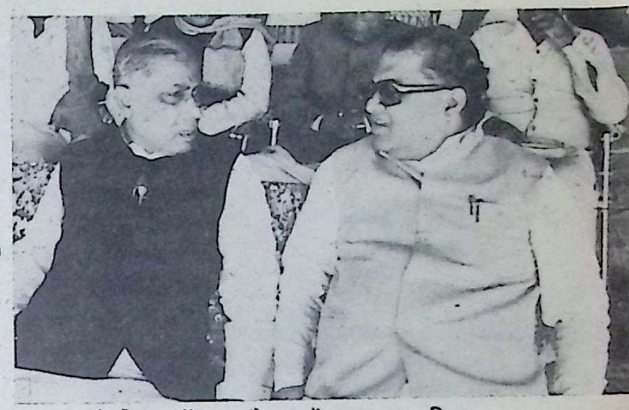

चंद्रशेखर सिंह और डॉ. जगन्नाथ मिश्र : मजबूरी का साथ

लगता है चंद्रशेखर सिंह तथा जगन्नाथ मिश्र द्वारा दिल्ली से लाया गया दोस्ती का गुलदस्ता कागजी फूलों से भरा है. यह बात दीगर है कि अल्पसंख्यकों तथा पिछड़ी जाति के इंका नेता इस नये नाटक को अपनी चुनावी अपेक्षा का संकेत मानते हुए करीब करीब यह विश्वास कर चुके हैं कि अगर चुनाव हुआ तो श्रीमती गांधी बिहार में भी सवर्ण हिंदू मतदाताओं पर ही ज्यादा भरोसा करेंगी और इसका पहला असर पड़ेगा टिकटों के बंटवारे पर. वैसे अल्पसंख्यकों तथा पिछड़ी जाति के नेताओं की शिकायत के वजन को कम करने के लिए एक तरफ जहां अब्दुल गफूर को केंद्रीय संगठन में ले लिया गया, वहीं रामशरण प्रसाद सिंह को राज्य मंत्रिमंडल में शामिल किया गया है. यह भी उल्लेखनीय है कि अब न तो अब्दुल गफूर के पास पहले वाला वोट बैंक है और न रामशरण प्रसाद सिंह ही खुद को पिछड़ों का नेता कह सकते हैं. अभी भी पिछड़ी जातियों पर किसी की पकड़ है तो वह है कर्पूरी ठाकुर की. बिंदेश्वरी दुबे का इंका प्रदेश अध्यक्ष बनना भी इस बात का संकेत है कि श्रीमती गांधी ब्राह्मणों के वोट बैंक पर पूरा कब्जा करना चाहती हैं. अल्पसंख्यकों का कामचलाऊ वोट बैंक डा. मिश्र के पास है ही.

चुनावी झाड़पोंछ का ऊपरी काम भले ही हो चुका हो और डा. मिश्र तथा चंद्रशेखर सिंह के बीच समझौता होने का दावा भी किया जा सकता है लेकिन अभी भी दल में अंतर्कलह है ही. बदली हुई स्थिति का पूरा पूरा फायदा डा. मिश्र उठाना चाहते हैं और यह बता देना चाहते हैं कि उन्हें मुख्यमंत्री पद से हटाने की भूल का अहसास आला कमान को अंततः हो ही गया. डा. मिश्र के पास अपने समर्थकों की एक सूची है जिन्हें वह मंत्रिमंडल में शामिल करने की मांग कर रहे हैं. यह तो तय है कि चंद्रशेखर सिंह न नहीं कर सकते, लेकिन जैसी कि खबर है, उन्हें दो तीन नामों पर आपत्ति है. डा. मिश्र संगठन में भी अपने समर्थकों की एक फौज रखना चाहते हैं ताकि भविष्य में उन्हें कठिनाई न हो. वैसे डा. मिश्र बिंदेश्वरी दुबे को प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष बनाये जाने पर यह कहते हैं "मेरी सभी मांगें पूरी हो गयीं और अब टकराव जैसी कोई बात नहीं". लेकिन यह सर्वविदित है कि वह एक वर्ष के अहसासों तथा जख्मों को इतनी आसानी से नहीं भूल सकते. यही बात चंद्रशेखर सिंह के साथ है. दोनों तरफ से अलग अलग कोशिश हो रही है कि इस समझौते को वे अपनी अपनी जीत साबित कर दें. ऐसी हालत से यह आशंका निर्मूल नहीं है कि दरारों के ऊपर रखी गयी दिल्ली की पटरी चुनावों से तो पहले चरमरा सकती है. वैसे दोनों को दिल्ली का सख्त आदेश मिला हुआ है कि वे टिकट के सवाल पर 'मेरा आदमी', 'उसका आदमी' कहकर नहीं झगड़ेंगे. लेकिन व्यवहारतः यह संभव नहीं, क्योंकि टिकटों का बंटवारा जाति के आधार पर होगा और डा. मिश्र यह दावा करेंगे कि वे जाति के गणित के बेहतर जानकार हैं.

12 अक्तूबर 1983 को डा.मिश्र ने जब पहली बार मधुबनी में जेहाद की घोषणा की और जनता की अदालत में अपने निष्कासन (मुख्यमंत्री का पद छिने जाने) का सवाल उठाया तो चंद्रशेखर सिंह घबरा उठे. उन्हें यह उम्मीद नहीं थी कि इंका के बरगदी शासन की अवहेलना कर डा. मिश्र इस तरह खुल्लमखुल्ला उनके खिलाफ जहर उगलेंगे. चंद्रशेखर सिंह ने डा. मिश्र की सभाओं को दलविरोधी साबित करने की भरपूर कोशिश की. उसी दौरान यह चर्चा उठी कि डा. मिश्र 'मैथिली-देशम्' नामक नयी पार्टी बनायेंगे. लेकिन ऐसा हुआ नहीं. इसकी एक वजह यह भी रही कि डा. मिश्र के ज्यादा समर्थक विधायक इतना बड़ा जोखिम उठाने को तैयार नहीं थे. 10 महीनों में 81 जनसभाओं को संबोधित कर डा. जगन्नाथ मिश्र ने जिस ढंग से चंद्रशेखर सिंह की आलोचना की, वह कर्पूरी ठाकुर जैसे विपक्षी नेता के लिए भी सपना है. इसके अलावा हर काम भी अपने अफसराना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिजाज की वजह से डा. मिश्र के लटके झटके बर्दाश्त नहीं कर सके और जनता को समझाते रहे कि वह इसलिए अच्छे हैं कि उन्हें आला कमान ने भेजा है. जनता की नजर में उनकी छवि उस वक्त धुंधली हो गयी जब अफसरी अंदाज में भ्रष्टाचार को समाप्त करने का वादा ही नहीं दावा भी करने लगे.

नौकरशाही का जातीय चेहरा भले ही बदला लेकिन बाकी सब कुछ वैसा ही रहा. साथ ही उच्चाधिकारियों के तबादलों आदि का चरित्र भी पूर्ववत राजनैतिक रहा तथा दुधारू पदों की खरीद फरोख्त का धंधा भी बदस्तूर जारी रहा. भले ही शुरुआत डा. मिश्र के जमाने में हुई हो लेकिन यह बात आज हर जुबान पर है कि भ्रष्टाचार को समाप्त करने का दावा करने वाले मुख्यमंत्री के राज्य में 75 हजार रुपए में 'डिप्टी कलेक्टर' का पद मिलता है. विकासकार्यों में चलने वाला लूट का धंधा भी पूर्ववत् जारी है. चंद्रशेखर सिंह की परेशानी यह भी है कि यहां का अफसरशाही का चरित्र पूरी तरह घोड़े की पीठ जैसा नहीं है. मतलब यह कि अफसरों का एक बड़ा तबका आज भी डा. मिश्र का भक्त बताया जाता है. इस तबके को विश्वास है कि लगाम के अगले वारिस डा. मिश्र ही होंगे. चंद्रशेखर सिंह ने जाति का गणित भी इस्तेमाल किया लेकिन वह अफसरशाही पर पूर्ण विजय प्राप्त नहीं कर सके हैं.

बिदेश्वरी दुबे कभी अपने आदमी नहीं हो सकते. यह सोच कर चंद्रशेखर सिंह काफी चिंतित हैं. अब तो चिंता का इजहार भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह आला कमान का चुनावी आदेश है. चंद्रशेखर सिंह तो समझ ही रहे थे कि प्रदेश अध्यक्ष का पद किसी ब्राह्मण को मिलना है और वह बार बार लोकेशनाथ झा का नाम ले रहे थे. लोकेशनाथ झा संप्रति मिथिलांचल की तीसरी शक्ति हैं. मैथिलों के बीच लोकप्रियता के हिसाब से वह डा. मिश्र तथा नागेंद्र झा के बाद आते हैं. वैसे लोकेशनाथ झा के पास संगठन के संचालन की अच्छी समझ जरूर है. वे चुनावी मौसम की गिरगिटी राजनीति के लिए उपयुक्त नहीं, यह बात जरूर है.

चर्चा यह भी है कि नागेंद्र झा को संगठन में लिया जायेगा. नागेंद्र जी के लिए यह चिंता का विषय है, क्योंकि वह वर्षों बाद मिले मंत्रिपद को छोड़ने के 'मूड' में नहीं दीखते. कई और मंत्रियों को हटाने की बात भी हवा में है. जिन लोगों के लिए खतरा पैदा हुआ है, वे इस फिराक में हैं कि उनकी कुर्सी भी बची रहे और डा. मिश्र भी संतुष्ट हो जायें— यानी दो तीन मिश्र समर्थकों को शामिल कर लिया जाये. ■

मध्यप्रदेश

एक ओर गरीबी हटाओ अभियान

राजेंद्रकुमार मिश्र

मैं कनाट प्लेस में एक दुकान से निकला ही था कि एक लंगड़ा कर चल रहे अधेड़ उम्र के फटेहाल आदमी ने मेरा रास्ता रोक कर कहा, "साहब मेरी कुछ सहायता कर दीजिए."

मैं चौंका. आदमी देखने में भिखारी नहीं लगता था. मैंने अपनी जेब में झांक कर बिना कुछ निकाले उत्सुकता से पूछा, "आप कहां रहते हैं?"

"मैं साल भर पहले सहारनपुर के पास एक गांव से यहां आया था. गांव में गुजारा नहीं होता. यहां रिक्शा चलाता था. कुछ दिन पहले चोट खा गया. तब से बेकार हूं."

उससे दो मिनट बात करने पर मालूम हुआ कि गांव में 'तिवारी जी' के पास इतनी कम जमीन है कि उससे पांच लोगों के परिवार का पेट नहीं भरता, इसलिए वे और उनका लड़का शहरों की खाक छानने पर मजबूर थे. लड़का भी रिक्शा चलाता था और दोनों एक झुग्गी में रहते थे. लड़का अब बीमार रहने लगा था.

"आप कोई दूसरा काम क्यों नहीं करते?" मैंने उपदेश दिया.

"उसके लिए पैसा चाहिए साहब! बड़ी मुश्किल से तो मैं झुग्गी का किराया दे पाता हूं. जो बचता है उससे पेट भर खाना नहीं खा पाता. काम कैसे शुरू करूं?"

मैंने उसे एक का नोट देकर कहा, 'भगवान आपका भला करें!' मेरा मन खराब हो गया जिसे ठीक करने के लिए मैं एक काफी हाउस में घुस गया और अपने ब्रीफकेस से मुक्तिबोध का कविता संग्रह निकाल कर पढ़ने लगा.

मैं उन संवेदनशील 'बुद्धिजीवियों' में से हूं जो शहरों में फैली अमानवीय दरिद्रता को देख-देखकर इतने निराश हो चुके हैं कि अब उनके मन में उसके प्रति कोई सहानुभूति भी उत्पन्न नहीं होती, क्योंकि सहानुभूति खुद की, समाज की, शासन की नपुंसकता का अहसास कराती है. न इन गरीबों की हालत सुधारने के लिए किये गये किसी प्रयास की सफलता का विश्वास ही मन में पैदा होता है. अब तो समाज के प्रति दायित्व का निर्वाह करने के लिए चारों ओर फैले भ्रष्टाचार की निंदा करने के अलावा कोई चारा ही नहीं है. यह काम सबसे अधिक शासकीय अधिकारी और कर्मचारी करते हैं. क्योंकि शासन में 'बुद्धिजीवियों' की संख्या सबसे ज्यादा है, इसीलिए शासन द्वारा चलायी गयी अनेक अच्छी से अच्छी योजनाएं सफल नहीं हो पातीं.

खुशकिस्मती से और वर्गों की तरह शासन में दूसरी तरह के लोग भी हैं जो दरिद्रता की व्यापकता, साधनों की कमी, अक्षमता और भ्रष्टाचार से हतोत्साह न होकर यह सोचने का साहस करते हैं कि गरीबी और तकलीफ दूर की जा सकती है और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हर संभव प्रयास करते हैं.

मध्यप्रदेश शासन ने 17 अप्रैल, 1984 को राज्य के 327 शहरों-कस्बों में बसे लाखों झुग्गीवासियों को जिस जमीन पर वे रहते आये हैं उसकी मिल्कियत देने का जो कानून पास किया था वह नुक्ताचीनी के बावजूद चार महीनों के अंदर यानी 15 अगस्त तक डेढ़ लाख परिवारों को, जिनमें से अधिकतर दादाओं को झुग्गी का किराया देने पर मजबूर थे, जमीन की मिल्कियत देने में सफल हुआ है. यह काम उसी सरकारी अमले ने किया है जो, यदि उसे यह काम न करना पड़ता, तो भी अपनी तनख्वाह और भत्ता पाता रहता.

जमीन कांटने और दादा लोगों से इतने लोगों को मुक्ति दिलाने के बाद राज्य शासन ने इन लोगों को विभिन्न धंधों में प्रशिक्षित करने और स्वरोजगार के लायक बनाने की एक और योजना शुरू की. मैं इस योजना को लेकर एक अखबार के दफ्तर में गया. मेरे एक मित्र सहायक संपादक ने मेरी बात पूरी सुने बिना हंसते हुए कहा, 'इलेक्शन गिमिक!'

'लेकिन जो डेढ़ लाख परिवारों को मुफ्त जमीन मिल गयी उसके बारे में आपका

'रिक्शा खींचना ही मेरी नियति है'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्या कहना है?'

सहायक संपादक को एकाएक कोई जवाब न सूझा. मैंने कहा, 'यह तो मानेंगे ही कि यह एक जबर्दस्त काम हुआ है.'

वे कनविंस प्रतीत हुए. मैंने महसूस किया कि इस जमाने में कोई अच्छा काम किया जा रहा है, इस पर किसी के मन में विश्वास पैदा करना कितना कठिन है.

तिवारी जी की तरह आज लाखों लोग गांवों से भाग कर शहरों में आ रहे हैं. इन्हें आप रोक नहीं सकते. इनमें से अधिकतर गरीबी की रेखा के नीचे हैं. दरअसल मध्यप्रदेश की शहरी आबादी का आधा भाग यानी 51 लाख लोग इस रेखा के नीचे हैं. ऐसे हर आदमी की आमदनी पछत्तर रुपये महीने से कम है. इनमें से करीब अट्ठारह लाख आदिवासी या हरिजन हैं. इनकी आवासीय और आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए राज्य शासन ने देश में पहली बार नगरीय कल्याण विभाग की स्थापना की है.

अभी तक जिन डेढ़ लाख परिवारों को आवास भूमि दी गयी है उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए एक रोजगार और प्रशिक्षण योजना 'स्टेप-अप' नगरीय कल्याण विभाग द्वारा शुरू की गयी है.

शासन स्टेप-अप के माध्यम से सहायता के पात्र व्यक्तियों और परिवारों की तलाश करेगा. बैंक अभी यह काम नहीं कर पा रहा है.

स्टेप-अप की योजना का क्रियान्वयन जिलाधीश करेगा और प्रशासनिक कार्य एक डिप्टी कलेक्टर के जिम्मे होगा.

मध्यप्रदेश शासन द्वारा कुछ दिन पहले एक अध्यादेश जारी किया गया है जिसके परिणाम-स्वरूप साइकिल रिक्शाचालक अब अपने रिक्शों के मालिक बनेंगे. ऐसा करके सरकार ने पूंजी द्वारा श्रम के शोषण का एक अत्यंत क्रूर तरीका समाप्त कर दिया है.

दरअसल, रिक्शे का मालिकाना हक रिक्शाचालकों को कानून की मदद दिलाने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें वित्तीय सहायता दी जानी चाहिए जिसमें 50 प्रतिशत अनुदान भी शामिल हो. अतः नये कानून में इस बात का अनिवार्य प्रावधान होना चाहिए कि जो व्यक्ति शारीरिक रूप से खुद रिक्शा नहीं चला सकता वह रिक्शा नहीं रख सकता. यह प्रतिबंध दो बिंदुओं पर लगाया जा सकता है. पहला यह कि लाइसेंस के लिए आवेदन करने वाला व्यक्ति खुद रिक्शा खींच सकता है या नहीं. इस बात का सत्यापन करना कोई कठिन काम नहीं है. जो रिक्शा खुद न खींचने वाले हों, उन्हें लाइसेंस देने से मना कर दिया जाना चाहिए और दूसरा यह कि वास्तविक रिक्शा खींचने वालों को बिना किसी शुल्क के लाइसेंस दिया जाना चाहिए. ■

राजस्थान

पुष्कर पर हिप्पियों का हमला

शांत और सूने माहौल में अपनी मौज और मस्ती को ढूंढ़ने वाले हिप्पियों की नजर कुछ वर्षों से राजस्थान की पवित्र नगरी पुष्कर पर कुछ अधिक ही पैनी होकर गड़ गयी है. लगता है कि उन्हें मनाली के वातावरण से ऊब हो गयी है जिससे काफी बड़ी संख्या में वे पुष्कर की तरफ कूच कर गये हैं. हालांकि आम लोगों ने शुरू में 'अतिरिक्त कमाई के लालच में उनकी पाश्चात्य संस्कृति को भी सहा', लेकिन लगता है अब पानी सिर से गुजर गया है. प्रस्तुत है पुष्कर का दौरा करके लौटी चंद्रकांता शर्मा की रपट :

पुरातन वैभव की सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा धार्मिक नगरी पुष्कर की पावनता पर पिछले कई वर्षों से 'हिप्पियों' का खुले आम हमला हो रहा है लेकिन लगता है राज्य तथा जिला प्रशासन हालात से बेखबर है. पुष्कर देश का वह तीर्थ है जिसके बारे में कहा जाता है कि चारों धाम के बाद पुष्कर नहीं नहाये तो उसका पुण्य फल प्राप्त नहीं होता. इसीलिए प्रतिदिन हजारों की संख्या में तीर्थयात्री पुष्कर के पवित्र सरोवर में स्नान कर अपनी धार्मिक श्रद्धा व्यक्त करते हैं.

पुष्कर अजमेर शहर से 11 किलोमीटर की दूरी पर अरावली की सुरम्य पर्वत श्रृंखला से घिरा 10-15 हजार की आबादी वाला कस्बेनुमा शहर है. पुष्कर में लगभग चार सौ मंदिर हैं जिसमें रंगजी एवं ब्रह्माजी के मंदिर विश्वविख्यात हैं. ब्रह्माजी का मंदिर केवल पुष्कर में है. विश्वास किया जाता है कि पुष्कर के अलावा 'ब्रह्माजी' की पूजा और कहीं भी नहीं की जाती. पूरा पुष्कर शहर अंडाकार झील के चारों ओर बसा हुआ है. झील पर 50-60 घाट हैं. गऊ घाट, वराह घाट तथा ब्रह्माघाट सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं. पुष्कर में सैकड़ों धर्मशालाएं तथा अनेक होटल हैं. कार्तिक पूर्णिमा पर पुष्कर में लक्खी मेला लगता है जहां पर देश-विदेश से तीर्थयात्री पहुंचते हैं. इस मेले में पशुओं की खरीद फरोख्त तथा रोजमर्रा की चीजें बिकती हैं. यह मेला 15 दिन तक चलता है, जिसमें महीने भर पहले से ही दूकानदार

पुष्कर का तीर्थ स्थल

सैकड़ों मील दूर से पहुंचकर दूकान लगाते हैं.

पुष्कर के इस पारंपरिक स्वरूप को हिप्पियों द्वारा जो ठेस पहुंचायी जा रही है उससे उसका धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप क्षत-विक्षत हो रहा है. तस्करी नथा नशेबाजी, उनकी अश्लील हरकतें इस पावन नगरी पर अनेक प्रश्नचिन्ह लगा रही हैं. इस समय पुष्कर में ढाई हजार हिप्पी वैध-अवैध रूप से अपना संसार बसाये हुए हैं. यह भी सुना जाता है कि वे चरस, गांजा एल. एस. डी., हेरोइन आदि की सेवन तथा उनका प्रचार प्रसार करके उस की आड़ में तस्करी को अपना जीविकोपार्जन का धंधा बनाये हुए हैं. सैकड़ों हिप्पी जोड़े ऐसे हैं जो कई वर्षों से अवैध रूप से यहां रह रहे हैं. उनके 'वीज़ा' की अवधि समाप्त हुए सालों बीत गये हैं, परंतु उन्हें कोई यहां से खदेड़ने वाला नहीं है. वे जिस हिप्पी संस्कृति को जन्म दे रहे हैं वह भारतीय संस्कृति के सर्वथा विपरीत है.

स्थानीय लोगों को इन्होंने आर्थिक प्रलोभन देकर इस तरह फंसा लिया है कि फिलहाल उन्हें भी हिप्पियों का यहां से जाना गवारा नहीं. कुछ लोगों ने अपनी हवेलियों को होटलों में तबदील कर दिया है तथा 25 रुपये रोजाना के हिसाब से कमरे किराये पर उठा दिये हैं. अवैध रूप से लायी गयी अफीम, चरस, गांजा तथा हेरोइन की तस्करी से काला धंधा खूब फल फूल रहा है.

भारतीय संस्कृति की मूल भावना पर इन हिप्पियों द्वारा कहर बरपाया जा रहा है. अगर इन्हें यों ही पनपने दिया गया तो यह स्थल अवैध धंधों के लिए बदनाम हो जायेगा तथा लाखों श्रद्धालुओं की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचेगी और राजस्थान जैसे शांत प्रदेश के लिए ये लोग गंभीर कानून और व्यवस्था की समस्या बन जायेंगे. ■

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दुनिया भर की

टी-शर्ट के माध्यम से घुसपैठ

आजकल रूस की युवा पीढ़ी में अमेरिकी नमूनों के टी-शर्ट बेहद लोकप्रिय हो रही हैं. इन पर छपी कुछ उक्तियों पर गौर कीजिए: 'रक्तिम होने से मौत भली.' 'मुद्रास्फीति में पूंजी लगाइये,' या एक युवती अपनी टी-शर्ट के माध्यम से यह संदेश दे रही थी : 'दाम चुकाओ और मैं तुम्हारी.' अजब बात है कि साम्यवादी रूस में लाल रंग की ऐसी अवज्ञा, या फिर सरकार द्वारा नियंत्रित भावों के देश में मुद्रास्फीति की बात. रूस का साम्यवादी दल चिंतित है कि युवा पीढ़ी पश्चिमी प्रभाव से विशेष प्रभावित हो रही है. इसलिए फैसला किया गया है कि रूस में ऐसी टी-शर्ट बनायी जायेंगी जिन पर आदर्शवादी संदेश छपे होंगे.

रूस की सड़कों-गलियों में सिर्फ युवा वर्ग ही नहीं बल्कि पश्चिमी परिधान के शौकीन अधेड़ भी नजर आते हैं. सरकारी पत्र 'इज्वेस्तिया' के अनुसार इनमें से अधिसंख्य को यह नहीं पता कि उनका धारण किया हुआ संदेश क्या कहता है. इधर युवक-युवतियों का कहना है कि वे अपने देश के पिटे-पिटाये नारों से तंग आ चुके हैं. वे भीड़ से अलग दीखने के लिए भिन्न-भिन्न तरह के कपड़े पहनते हैं; उसके लिए उन्हें चाहे कोई भी कीमत चुकानी क्यों न पड़े. लेकिन साम्यवाद के वफादारों के अनुसार रूसी युवा पीढ़ी का यह रुख पश्चिम के आदर्शों को फायदा पहुंचायेगा, क्योंकि वह भौतिकवाद का प्रतीक है. इस समय अमेरिकी टी-शर्ट की मांग इतनी बढ़ी हुई है कि वे ऊंचे भाव पर काले बाजार में बिक रही हैं.

कला के ये नकलची

इटली के वास्तुशिल्पी मोदिगिलिआनी के जन्म स्थान के तीन 20 वर्षीय उदीयमान कलाकार, फ्रांसेस्को पेरुचि, मिशेल वेलारहुची और पिएत्रो लुरिदिआना, ने साबित कर दिया है कि वे चार घंटे में इस महान कलाकार की कृतियों की ऐसी नकली आकृतियां तैयार कर सकते हैं जो कला पारखियों और आलोचकों की नजरों को भी धोखा दे जायेंगी.

हाल में इटली के टेलीविजन पर 'नकल की कला' की कार्यविधि को प्रदर्शित करते हुए कला के इन छात्रों ने बताया कि सबसे पहले वे सही आकार के कुछ स्थानीय नर्म पत्थर जुटाते हैं. उसके बाद मोदिगिलिआनी की कलाकृतियों के चित्र लेकर बैठते हैं. फिर छेनी, हथौड़ी और खड़िया के एक टुकड़े की सहायता से उस नर्म पत्थर पर आकृति उकेरते हैं.

कहा जाता है कि वास्तुकार मोदिगिलिआनी ने कभी हताशा और असंतोष से घिर कर, 1909 में अपनी कुछ कृतियों को एक नहर में फेंक दिया था. इस वर्ष जब उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर उनकी कलाकृतियों की एक प्रदर्शनी के लिए नहर से इन मूर्त्तियों को खोज निकालने की बात उठी और टुकड़ों-टुकड़ों में कुछ कृतियां पायी भी गयीं. तीन छात्रों की दिमागी उपज थी कि क्यों न नकल के ज़रिए कुछ धन कमाया जाये. लेकिन इससे ज्यादा लाभ न होने पर उन्हें एक तरीका और सूझा और एक पत्रिका में उन्होंने अपने चित्र सहित कहानी दे दी. उनकी बात पर जब किसी को विश्वास न हुआ तो टेलीविजन पर उन्हें अपना दावा साबित करना पड़ा.

शाबाश ग्रेहाउंड, तुम फूलो-फलो

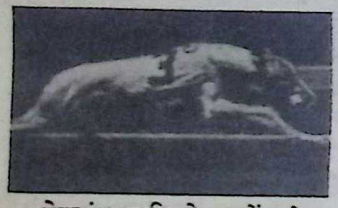

ग्रेहाउंड जाति के कुत्तों ने हमेशा से खेलप्रेमियों को रोमांचित किया है. इस तेज दौड़ने वाली नस्ल को कुत्तों की दौड़ में अक्सर ही अन्य कोई नस्ल हरा नहीं पाती. यही वजह है कि इसकी बिक्री बहुत ऊंचे दामों पर होती है. हाल में ऐसे ही एक ग्रेहाउंड कुत्ते की कीमत, जिसने 114 दौड़ों में विजय प्राप्त करके, चार वर्ष की उम्र में, महीना भर पहले खेल की दुनिया से अवकाश ग्रहण किया, 250,000 डालर लगी.

अब इस ग्रेहाउंड का एकमात्र काम होगा संतानोत्पत्ति. इस समय उसका एक पिल्ला 750 डालर में बिकता है और इससे हफ्ते भर की कमाई 2,500 से 3000 डालर तक होती है. इसे खरीदने वाली कोलोराडो की संस्था डायमंड ग्रेहाउंड एंड जेनेटिक्स के पास दौड़ने वाले 120 कुत्ते हैं और वे एक ऐसी पद्धति के विकास पर शोध कर रहे हैं जिससे इन गौरवशाली कुत्तों के वीर्य का एक भंडार तैयार किया जा सके और इस वीर्य से, कृत्रिम गर्भाधान द्वारा, उनकी नस्ल को बढ़ाया जा सके.

दमदार बुजुर्गों का देश जापान

जापान में इस समय 1,563 व्यक्ति ऐसे हैं जो सौ की उम्र को पार कर गये हैं. इनमें तोकुनोशिमा द्वीप के 119 वर्षीय शिगेचिके इजमी सबसे आगे हैं. शतक पूरा करने वालों की संख्या, गत वर्ष से, 209 अधिक है और 1963 से अब तक दस गुना बढ़ी है, जब सिर्फ 153 व्यक्ति ही सौ वर्ष पूरे पर पाये थे. स्त्रियां उम्र की इस दौड़ में पुरुषों से आगे निकल गयी हैं, जिनकी संख्या क्रमशः 1,216 और 347 है.

'मिस्टर नून' 12 वर्ष लापता रहे

अंग्रेजी के विख्यात लेखक डी. एच. लारेंस ने 1921 में 'मिस्टर नून' नाम से एक उपन्यास लिखना शुरू किया था, लेकिन उसके खत्म होने की जानकारी किसी को नहीं मिली. 12 वर्ष लापता रहने के बाद यह कृति फिर सामने आयी है, जिसमें, हल्के आच्छादन के नीचे, लेखक ने स्वच्छंद आचरण करने वाली पत्नी फ्रेडा के साथ अपने जीवन की आत्मगाथा लिखी है.

1962 में ब्रिटेन में लारेंस का बहुचर्चित उपन्यास **लेडी चैटरलीज लवर** प्रकाशित हुआ, तो हलचल मच गयी थी. यौन संबंधी घटनाओं का इतना बेबाक चित्रण इससे पहले किसी ने नहीं किया था. अंततः इस किताब की बिक्री पर पाबंदी लगा देनी पड़ी. 'मिस्टर नून' के प्रकाशक कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस का कहना है कि बारह साल का कुछ समय पांडुलिपि की प्रामाणिकता को जांचने में लगा.

'रद्दी' खाद्य से इन्हें बचाओ

स्वीडनवासियों को स्वयं से बचाने के लिए वहां की राष्ट्रीय स्वास्थ्य कल्याण संस्था ने मांग की है कि संसद ऐसे विज्ञापनों पर पाबंदी लगाये जो 'रद्दी' खाने के प्रति लोगों को आकर्षित करते हों. 'रद्दी' खाद्यों में चाकलेट, मिठाई, मूंगफली और आलू के चिप्स जैसे अस्वास्थ्यकर खानों को शामिल किया गया है. धूम्रपान के प्रति लोगों को आकर्षित करने वाले सिगरेट के विज्ञापनों पर वहां प्रतिबंध है ही. वैसे सिनेमा और टेलीविजन पर चुइंग गम और चाकलेट के विज्ञापन नहीं दिये जाते, लेकिन अन्य माध्यम इनका खूब प्रचार करते हैं.

यह संस्था पहले भी स्वीडनवासियों को स्वस्थ जीवन जीने के लिए आवश्यक खान-पान के बारे में सचेत करने का प्रयास कर चुकी है. कुछ वर्ष पहले उसने बड़े-बड़े विज्ञापनों के माध्यम से लोगों को यह समझाने की कोशिश की थी कि हर व्यक्ति को दिन भर में डबलरोटी के छह से आठ टुकड़ों से न कम न ज्यादा खाना चाहिए. ■

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीलंका:

कौन कहता है कि

सरकार आतंकवादी नहीं हो सकती

उदय प्रकाश

मंगलवार, 11 सितंबर को कोलंबो से जाफना जा रही बस के 40 यात्रियों में से 15 को ववुनिया कस्बे के निकट क्रूर तरीके से मार दिया गया. सात-स्त्रियां लापता थीं और जिन अधिकारियों ने मौके की जांच पड़ताल की, उन्होंने औरतों के पेटीकोट और जांघिए यहां वहां बिखरे देखे, संपत्ति लूटी गयी. जिन लोगों ने ववुनिया में लाशों को देखा है, उनका कहना है कि 'एक तमिल युवक की आंखों में गोली मारकर उसकी खोपड़ी उड़ाई गयी.' यह घटना पिछले सोमवार को अलामतिल नामक जगह पर खान के विस्फोट में मारे गये कुछ सरकारी सैनिकों की घटना के बाद घटी, इसलिए इन दोनों में कोई न कोई संबंध जरूर है. श्रीलंका सरकार द्वारा कड़ी सेंसरशिप के कारण ऐसे हत्याकांडों के बारे में कोई आधिकारिक खबर अक्सर नहीं मिल पाती और ज्यादातर खबरें अफवाहों और कानाफूसियों के जरिये फैलती हैं. लेकिन आश्चर्य यह है कि जनता का यह 'अमुद्रित संचार माध्यम' श्रीलंका के प्रमुख अखबारों के मुकाबले कहीं ज्यादा प्रामाणिक खबरें देता है.

जो लोग ववुनिया के लोमहर्षक हत्याकांड से किसी तरह बच निकले हैं, उनका कहना है कि श्रीलंका के सैनिकों के एक गिरोह ने यह हत्याकांड किया है. कुछ विदेशी विशेषज्ञ श्रीलंका की वर्तमान सेना को 'संसार की सबसे ज्यादा अनुशासनहीन सेना' मानते हैं. वैसे इस कथन में एक शातिर चालाकी भी है, यानी इसके मार्फत यह धारणा फैलायी जा रही है कि जैसे 'जयवर्धन सरकार के आदेश कुछ और ही हैं और सेना बिना उनकी परवाह किये, मनमाने ढंग से ऐसी कारगुजारियां खुद कर रही है.' कहने का कुल जमा मतलब यह कि सारा दोष अनुशासनहीन सैनिकों का है, सरकार का नहीं.

जयवर्धन सरकार की नयी संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार किसी भी मुठभेड़ में मारे गये लोगों के शवों के पोस्टमार्टम रिपोर्ट कोलंबो स्थित उच्च न्यायाधीश के पास गुप्त रूप से भेज दिये जाते हैं और शवों को ठिकाने लगा दिया जाता है. ऐसी हत्याओं के लिए खुली न्यायिक जांच की कोई गुंजाइश ही नहीं छोड़ी गयी है. अगर कहीं कभी कोई जांच हुई भी तो उसकी रपट अटार्नी जनरल को गुप्तरूप से दे दी जाती है, जो उसे कभी सार्वजनिक तौर पर प्रकट नहीं करता. सारी जिम्मेदारी स्थानीय डी. एस. पी. की होती है कि वह मारे गये लोगों की लाशों को कैसे फूंके.

पिछले कुछ महीनों से श्रीलंका सेना का तमिल अल्पसंख्यकों के खिलाफ ऐसा बर्बरतापूर्ण प्रतिशोध यह प्रमाणित करता है कि जयवर्धन सरकार तमिल समस्या को राजनैतिक नहीं, पूरे तौर पर 'फौजी तरीके' से निपटाने के लिए कमर कस चुकी है. यह जयवर्धन सरकार की उग्र नस्लवादी सोच का ही नतीजा था कि जनवरी 1984 में आयोजित राजनैतिक दलों का अधिवेशन (ए. पी. सी.) असफल रहा और अब उसकी कोई जरूरत ही नहीं समझी जा रही है. इस साल मार्च महीने से 'तमिल उग्रवादियों के सफाये' की जो मुहिम श्रीलंका की सेना ने चला रखी है, उसमें किसी भी राजनैतिक संवाद और समाधान की गुंजाइश ही नहीं छोड़ी गयी है.

कुछ पत्रकारों और विशेषज्ञों का मत है कि श्रीलंका में तमिलों के विरुद्ध कड़ी और बर्बर सैनिक कार्रवाई की प्रेरणा जयवर्धन सरकार को भारत सरकार द्वारा पंजाब पर सुरक्षा कार्रवाई से प्राप्त हुई है. लेकिन तथ्य कुछ और ही कहते हैं. जयवर्धन सरकार को यह प्रेरणा या सुझाव दक्षिण अफ्रीका की नस्लवादी सरकार और इस्राइल से प्राप्त हुआ है. दक्षिण अफ्रीका, सिंगापुर, ब्रिटेन, जापान, दक्षिण कोरिया और चीन के द्वारा श्रीलंका सरकार को खुले दिल से मिलने वाले हथियार और सैनिक प्रशिक्षण की बात तो 10 अगस्त को वहां के सुरक्षा मंत्री **श्री ललित अतुलाथमुदाली** स्वीकार ही कर चुके हैं. एक अनुमान के अनुसार इस समय श्रीलंका की सेना में लगभग 5000 कमांडो ऐसे हैं, जिन्हें 'विशेष विदेशी प्रशिक्षण' मिला हुआ है.

ऐसा लगता है कि जूलियस जयवर्धन काफी पहले से तमिल अल्पमत को कुचलने की ठान चुके थे. इसी को ध्यान में रखते हुए उन्होंने पिछले महीने विदेश यात्रा की थी. चीन, अमेरिका और इंग्लैंड की उनकी यात्रा अपनी खुली सैनिक कार्रवाई के लिए बाहरी समर्थन बटोरने के उद्देश्य से ही हुई थी. उन्हें इन देशों से भरपूर समर्थन मिला भी. अमेरिका में इसी समर्थन के जोश में डूबे जयवर्धन ने 'साइंस मॉनिटर' को दिये गये अपने साक्षात्कार में कहा था कि **'अगर तमिल आतंकवादी बाज नहीं आये तो श्रीलंका के इतिहास में हजारों जुलाई महीनों की पुनरावृत्ति होगी.'** उनका संकेत जुलाई महीने में श्रीलंका के सैनिकों द्वारा तमिलों के बर्बर नरसंहार की ओर था.

इस सारे पहलू का सबसे चिंतनीय पक्ष यह है कि श्रीलंका सरकार की यह सैनिक कार्रवाई सिर्फ तमिल आतंकवादियों के विरुद्ध सीमित न रहकर निर्दोष तमिल नागरिकों के दमन और संहार तक पसर गयी है. एक पत्रकार की टिप्पणी है कि **'जितनी संख्या इस समय श्रीलंका में तमिल आतंकवादियों की है, उससे कई गुना ज्यादा तादाद श्रीलंका की सेना में 'सिंहली आतंकवादियों' की है.'**

मन्नार, जहां दो घंटे की लूटपाट, हिंसा और आगजनी में 'सरकारी नजर में' पांच लोग मारे गये

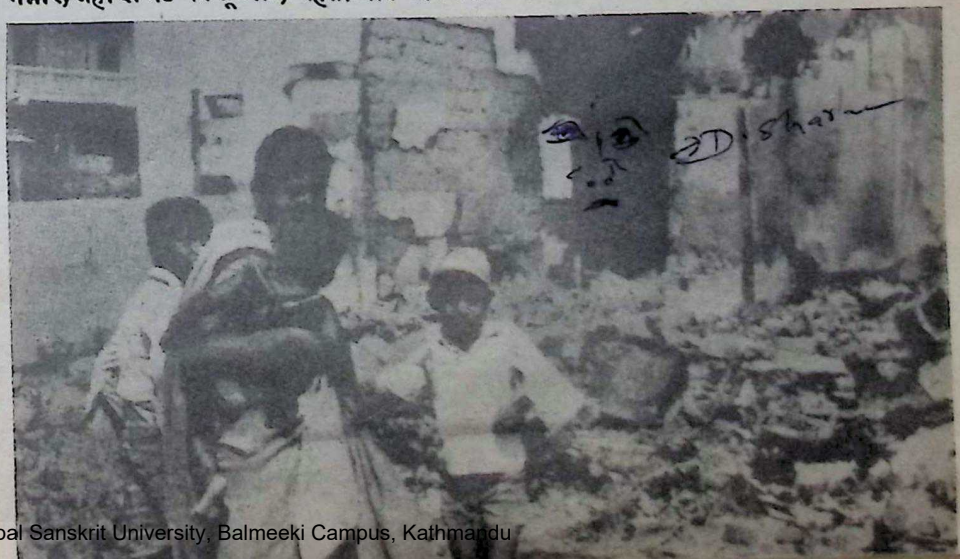

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस्राइल की कुख्यात खुफिया एजेंसी मसाद और शिन बेत के अलावा इंग्लैंड की विशेष-वायुसेवा (एस.ए.एस.) के 'रिटायर्ड वायुसेना विशेषज्ञ' भी श्रीलंका सरकार को खुफिया प्रशिक्षण दे रहे हैं. अगर 'मेनस्ट्रीम' के ताजा वार्षिक अंक में प्रकाशित श्री एस. डी. मुनि के विश्लेषण को ध्यान में रखा जाये तो कहा जा सकता है कि श्रीलंका अब लगभग 'नाटो' की गोद में बैठ चुका है. श्रीमती थैचर ने भी जयवर्धन को अपना समर्थन दिया है, जिसका सबूत श्रीमती गांधी को उनके द्वारा भेजा गया वह पत्र है, जिसमें उन्होंने यह लिखा है कि, श्री जयवर्धन जब तमिलों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई करें तो श्रीमती गांधी को संयम बनाये रखना चाहिए. पता नहीं यह भारत सरकार से बर्तानिया हुकूमत का आग्रह है या 'नाटो' द्वारा भारत को परोक्ष चेतावनी? लेकिन अब यह स्पष्ट हो चुका है कि श्रीलंका अपनी जातीय समस्याओं के निपटारे की तलाश में जिस रास्ते पर चल निकला है, वे रास्ते गृहयुद्ध से लेकर विश्वयुद्ध तक पहुंचते हैं.

पिछले पांच छह महीनों में श्रीलंका के सैनिकों ने जिस तरह से बर्बर कार्रवाइयां तमिल अल्पसंख्यकों के विरुद्ध की हैं, उसकी तुलना किसी भी पंजाब से नहीं की जा सकती. मृत लोगों के आंकड़े, जले हुए मलबों-मकानों के ढेर, शरणार्थियों के बढ़ते काफिले और जेलों में मरे हुए तमिल युवाओं की संख्या ऐसी किसी भी तुलना को फिजूल साबित करती है. सवाल यह उठता है कि नक्सलवादियों, असम के शरणार्थियों, पंजाब के आतंकवादियों, अफगानिस्तान के छापामारों के मामले में फौरन बुलेटिन पर बुलेटिन प्रसारित करने वाली 'एम्नेस्टी इंटरनेशनल' श्रीलंका के निर्दोष तमिलों की हत्या पर उतनी सक्रिय और मुखर क्यों नहीं है? लगता है अमेरिकी विदेशमंत्री श्री जार्ज शुल्ज के इस कथन की भूमिका वहां कम नहीं है— **'आखिर आतंकवाद भी तो मानव अधिकारों का खुला उल्लंघन है.'**

यानी अब सत्ता ही नहीं, सत्ता के दमन के विरुद्ध जनता द्वारा हथियारबंद प्रतिरोध भी 'एमनेस्टी इंटरनेशनल' के लिए उतना ही भर्त्सनीय होगा. शासक की हिंसा और उसके प्रतिरोध में शासित की हिंसा के बीच कोई न कोई फर्क तो खोजना ही पड़ेगा. ■

दक्षिण कोरिया

चुन की जापान यात्रा

इतिहास को भुलाना पड़ेगा

दक्षिण कोरिया के राष्ट्रपति चुन की पिछले दिनों जापान यात्रा महत्वपूर्ण है और विश्लेषण का विषय है क्योंकि 1000 वर्षों में दक्षिणी कोरिया के किसी भी राष्ट्रनेता ने जापान की यात्रा नहीं की. इसका कारण है दोनों देशों के रिश्तों के इतिहास में मौजूद कई रक्तरंजित अध्याय.

कोरियाई मानते हैं कि जापानियों की सभ्यता को बनाने का बहुत बड़ा श्रेय कोरियाइयों को जाता है. जापान में लेखन, मृत्तिका और बौद्धधर्म चीन के रास्ते से आये और इसे जापान तक पहुंचाने का श्रेय कोरियाई बुद्धिजीवियों, कलाकारों और भिक्षुओं को जाता है. लेकिन यह तो दोनों देशों के संबंधों का एक उजला पक्ष है. आइये इतिहास

चुन : इतिहास के प्रेत से युद्ध

यात्रा के विरोध में ओसाका में अनशन

की उन तारीखों को देखें, जहां दोनों देशों के बीच वैमनस्यता और कटुता की जड़ें गहराई तक धंसी हुई हैं.

—1592 में जापानी सम्राट रोयोटोमी हिदेयोशी ने अपनी डेढ़ लाख सेना के सहारे समुराई युद्ध में कोरिया को पराजित किया.

—1910 में पश्चिमी युद्ध तकनीक में पूरी तरह दक्ष जापान ने कोरिया को अपने कब्जे में ले लिया.

—1919 में राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में जूझ रहे 6,000 कोरियाई देशभक्तों को जापानी पुलिस और सेना ने मौत के घाट उतार दिया.

—1923 में टोकियो में यह अफवाह फैली कि वहां रहने वाले कोरियाई मूल के लोगों ने शहर के तमाम कुओं के पानी में जहर घोल दिया है और वे सत्ता हथियाने का षड्यंत्र कर रहे हैं. परिणामस्वरूप भयानक नस्लीय दंगे भड़के और अनेक कोरियाइयों का टोकियो में कत्लेआम हुआ.

—द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान से कोरिया के 'सस्ते मजदूरों' को जबरन जापान ले जाया गया. उन्हें बंधुआ मजदूरी से भी बुरी स्थिति में रहना पड़ा. इतना ही नहीं कोरिया के मुख्य कृषि उत्पादन—चावल की बड़ी मात्रा में जब्ती करके जापान ने समूची कोरियाई जनता को भुखमरी की कगार पर खड़ा कर दिया.

इसके बाद कोरिया के विभाजन की त्रासदी के बाद से, जब दक्षिण कोरिया अमेरिका के अधिकाधिक निकट होता गया, तब भी जापान के साथ उसके संबंधों के बीच यही पुराना इतिहास आड़े आता रहा. 1983 में जापान के प्रधानमंत्री नाकासोने की कोरियाई यात्रा के बाद चुन की यह जापान यात्रा दोनों देशों के इतिहास को भुलाने का प्रयास कही जा सकती है.

फिर भी चुन को अपनी इस यात्रा के दौरान अपने देश की जनता का ही नहीं, जापान में बसे कोरियाई मूल के लोगों के विरोध का सामना भी करना पड़ रहा है. उत्तरी कोरिया के उग्रवादियों द्वारा किये गये पिछले हत्याकांड की पुनरावृत्ति न हो, इसके लिए चुन की सुरक्षा का कड़ा इंतजाम जापान में किया गया. लगभग 23000 सुरक्षा कर्मचारियों को इस के लिए तैनात किया गया जो कि अपने आप में अभूतपूर्व है. सुरक्षा सैनिकों की यह संख्या, रेगन की जापान यात्रा में तैनात सैनिकों से भी कहीं ज्यादा है.

इस यात्रा के दौरान हालांकि नाकासोने ने दोनों कोरियाई देशों को संयुक्त राष्ट्र संघ का 'पूर्ण सदस्य' बनाये जाने की बात दुहराई है. लेकिन उत्तरी कोरिया की समाजवादी सरकार को इस पर हमेशा से आपत्ति रही है. जब तक दक्षिणी कोरिया में अमेरिका के 40,000 सैनिक और 100 सामरिक हवाई जहाज मौजूद हैं, उत्तरी कोरिया किसी भी शर्त पर दक्षिण कोरिया से बातचीत के लिए तैयार नहीं है. वैसे इस बार की यात्रा में चुन ने दोनों कोरियाओं के बीच एकीकरण या संबंधों में सुधार के स्पष्ट संकेत दिये हैं. उनका कहना है कि 'जापान ही वह जगह है, जहां दोनों देशों के बीच बातचीत होगी.' यानी अब चुन दक्षिण कोरिया के उस पुराने हठ को छोड़ते दिखायी दे रहे हैं, जिसमें उत्तरी कोरिया के साथ बिना अमेरिका कोई बातचीत न करने की शर्त थी. ■

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्पेन :

जीवन और मृत्यु के बीच झूलता एक जीनियस

अपनी पत्नी गाला के साथ

इस समय विश्व प्रसिद्ध अतियथार्थवादी चित्रकार सल्वाडोर डाली जीवन और मृत्यु के बीच कड़े संघर्ष में जूझ रहे हैं. पिछले दिनों वह कोस्टाब्रावा स्थित अपने घर में सो रहे थे कि उनकी पलंग में विद्युत स्फुलिंग से आग लग गयी और उनके शरीर का निचला हिस्सा बुरी तरह से जल गया. डाक्टरों का मत है कि आपरेशन के बाद भी 80 वर्षीय डाली अभी पूरी तरह से खतरे के बाहर नहीं हैं. हालांकि एक डाक्टर का कहना है कि 'डाली का चिरपरिचित क्रोध धीरे धीरे लौट रहा है, और निश्चित ही यह उनके स्वस्थ होने की निशानी है.'

सल्वाडोर डाली अपने समय के सर्वाधिक चर्चित कलाकार हैं. उनका अक्खड़पन, विनोदप्रियता, अराजक व्यक्तित्व और अपनी पत्नी गाला के प्रति उनका उत्कट प्रेम दंतकथा के रूप में मशहूर हो चुके हैं. 1982 में गाला की मृत्यु के बाद से डाली कैडाक्वेस गांव में बने अपने घर 'पूब्लो कासल' में एकाकी जीवन बिता रहे हैं. यह घर उन्होंने अपनी पत्नी को भेंट किया था. गाला की कब्र वहीं बनी हुई है और डाली ने खुद को वहीं दफनाये जाने की इच्छा प्रकट की है.

डाली के नौकरों का कहना है कि 'वह महीनों अपने कमरे से बाहर नहीं निकलते और केवल नर्सों को अंदर जाने की अनुमति है.' उन पर बने एक स्पेनी टेलीविजन फिल्म में दिखाया गया था कि उनका प्राइवेट सेक्रेटरी भी चाभी के छेद से झांककर उनसे बात करता है.

डाली का व्यक्तित्व अद्भुत रहा है. डाली ने चित्र ही नहीं, आभूषणों की डिजायन के अलावा रंगमंच और फिल्मों में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है. उनके एकमात्र उपन्यास 'हिडेन फेसेस' का अनुवाद लगभग संसार की हर भाषा में हुआ है और कहने की जरूरत नहीं, यहां भी उनकी अनियंत्रित संवेदनशीलता का असाधारण परिचय मिलता है.

—आभा दयाल

ब्राजील :

२० साल के सैनिक शासन का अंत

लगता है ब्राजील की 20 साल पुरानी फौजी हुकूमत अब सत्ता से बाहर जा रही है और वहां लोकतांत्रिक सरकार के बनने की संभावना लगभग निश्चित है. 1964 में तख्ता पलट के द्वारा सत्ता में आयी सैनिक सरकार के पांच जनरल पिछले बीस वर्षों में वहां के राष्ट्रपति के पद पर पदासीन हो चुके हैं. लेकिन अंतिम दो जनरलों ने सैनिक सरकार के बजाय राजनैतिक ढांचे की सरकार के प्रति अपना रुझान दिखलाया था और यह उसी का परिणाम है कि खूब तामझाम, नाच-गाने, सुंदर युवतियों और खुशी में डूबे नौजवानों की भीड़ के बीच ब्राजील के माडर्न कनवेंशन सेंटर में, आगामी जनवरी में राष्ट्रपति पद के लिए दोनों प्रमुख राजनैतिक दलों द्वारा अपने प्रत्याशियों का चयन किया गया.

ब्राजील के लोकतांत्रिक आंदोलन दल (डी. एम. पी.) ने अपने आगामी प्रत्याशी के रूप में 74 वर्षीय तानक्रेदो नेवेस को चुना है. वे उदार नीति के समर्थक माने जाते हैं और पेशे से वकील रहने के अलावा मिनास गेराइस प्रांत के गवर्नर भी रह चुके हैं.

नेवेस

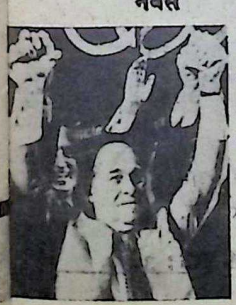

दूसरी तरफ सेना द्वारा समर्थित सामाजिक लोकतांत्रिक दल (एस. डी. पी.) ने अपना उम्मीदवार 52 वर्षीय पाउलो सलीम मालुफ को बनाया है. धुर दक्षिणपंथी मान्यताओं के मालुफ ब्राजील के अत्यंत धनी व्यापारियों में से एक हैं. कहा जाता है कि उम्मीदवार के रूप में उनके चयन के पीछे, पर्दे के पार जमकर लेन देन और दूसरे तरीकों का उपयोग हुआ.

इन दोनों उम्मीदवारों में से जो भी जीते, लोकतांत्रिक सरकार के सामने भी ब्राजील की 40 प्रतिशत बेरोजगारी और आसमान छूनेवाली 218 प्रतिशत की वार्षिक मुद्रास्फीति से सामना एक कड़ी चुनौती होगी.

फिर भी सैनिक सरकार ने भले ही लोकतंत्र के आने के लिए सत्ता के किवाड़ थोड़े से खोल दिये हों, उसने लोकतंत्र की गर्दन से अपना अंकुश पूरी तरह से हटाया नहीं है. इसका प्रमाण यह है कि राष्ट्रपति का चुनाव ब्राजील में सीधा और प्रत्यक्ष नहीं होगा, बल्कि ब्राजील के सभी 23 प्रांतों से चुने गये 686 प्रतिनिधियों की 'चयन सभा' द्वारा राष्ट्रपति का चयन किया जायेगा. नेवेस का जीतना लगभग निश्चित है और उन्होंने अभी से घोषणा कर दी है कि 'मैं ब्राजील पर 20 साल से लगे इस फौजी ग्रहण के सारे धब्बे मिटा दूंगा.' ■

पाकिस्तान की हलचल :

'भिंडरांवाले की जगह फारूख अब्दुल्ला नेता होंगे'

पाकिस्तान में भारत से संबंधित बहुत साधारण घटनाओं को अगर गंभीर और हैरतअंगेज बना कर पेश किया जाता है, तो दूसरी तरफ गंभीर और महत्त्वपूर्ण घटनाओं को चुटकुलों और लतीफों में बदल दिया जाता है. पिछले दिनों कुछ भारतीय पत्र-पत्रिकाओं ने इमरान खान (पाकिस्तान के प्रख्यात तेज गेंदबाज और भू.पू. क्रिकेट कप्तान) के साथ शबाना आजमी की बातचीत प्रकाशित की है. पाकिस्तान के बहुप्रसारित समाचारपत्र 'नवा-ए-वक्त' के 13 अगस्त के अंक में शबाना और इमरान की मुलाकात का एक दूसरा ही चित्र सामने आता है.

अखबार के अनुसार : शबाना ने इमरान खान से पूछा—'क्या आप शादीशुदा हैं?' इमरान का जवाब था, 'आदमी को उसी वक्त शादी करनी चाहिए जब वह समझदार हो जाये या फिर उसे बच्चे पैदा करने हों.' शबाना बीबी ने फिर सवाल किया, 'बच्चे तो आप शादी से हटकर भी पैदा कर सकते हैं.' इसका जवाब इमरान ने वही दिया जो एक सच्चे मुसलमान को देना चाहिए. उसने कहा, 'नहीं, मैं इस पर विश्वास नहीं रखता.' इसके बाद टिप्पणीकार लिखता है, 'शबाना

नवा-ए-वक्त में 23 अगस्त को प्रकाशित व्यंग्यचित्र : 'इस सबके पीछे सी. आई. ए. का हाथ है.'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बीवी भले ही प्रगतिशील तथा आधुनिक विचारों की हो लेकिन हैं तो मुसलमान की बेटी. आश्चर्य है कि उन्होंने ऐसा सवाल इमरान से जब पूछा तो उन्हें शर्म भी नहीं आयी. इसी बातचीत में शबाना आजमी ने भारत को धर्मनिरपेक्ष सिद्ध करने का भी प्रयत्न किया. लेकिन इमरान ने उसे 'बोल्ड आउट' कर दिया

'नवा-ए-वक्त' के 24 अगस्त के अंक में खालिस्तान समर्थक तत्त्वों की गतिविधियों के बारे में एक सनसनीखेज 'रपट' प्रकाशित हुई है, जिसके लेखक हैं **तारिक इस्माइल सागर.** उनके अनुसार लंदन के 'खालिस्तान हाउस' में जगजीतसिंह चौहान ने दो कोष स्थापित किये हैं. पहला कोष एक करोड़ पौंड का है, जिसे दरबार साहब पर सैनिक कार्रवाई करने वालों से बदला लेने के लिए इस्तेमाल किया जायेगा. दूसरा कोष भी एक करोड़ पौंड का है, जिसके द्वारा 'खालिस्तान आर्मी' निर्मित की जायेगी. खालिस्तान हाउस ने अपनी 'हिट लिस्ट' भी प्रकाशित की है, जिसमें श्रीमती इंदिरा गांधी तथा ज्ञानी जैलसिंह को मारने के लिए दस लाख पौंड, राजीव गांधी, जनरल आर. एस. दयाल आदि को मारने के लिए 5-5 लाख पौंड रखे गये हैं. पेशेवर हत्यारों की सेवाएं भी प्राप्त कर ली गयी हैं. भारतीय गुप्तचर विभाग ने इस गिरोह के एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति को गिरफ्तार कर लेने का दावा किया है. इंदिरा गांधी की हत्या के लिए भेजे गये इस व्यक्ति को पालम हवाई अड्डे पर गिरफ्तार कर लिया गया था. इंदिरा गांधी के एक सुरक्षा कर्मचारी की हत्या भी एक ऐसे ही व्यक्ति के हाथों हुई थी, जिसने अपना हुलिया हिंदुओं जैसा बना रखा था. इस लेख के अनुसार भारतीय गुप्तचर विभाग ने श्रीमती गांधी को आगाह किया है कि सार्वजनिक स्थानों तथा देश के भीतरी इलाकों के दौरों पर जाना कम कर दें, हालांकि राजनैतिक हलकों का कहना है कि आम चुनाव को ध्यान में रखते हुए यह संभव नहीं है. भारतीय सुरक्षा सेना को भी विशेष आदेश दिये गये हैं, कि वह दूर तक मार करने वाले ऐसे मिसाइलों से सावधान रहें जो विदेश से आने वाले हत्यारों को दिये गये हैं.

खालिस्तान समर्थक सिखों को, 'नवा-ए-वक्त' के अनुसार, जम्मू-कश्मीर की 'महाज राय आजादी' का समर्थन मिल चुका है. यह गठबंधन संत भिंडरांवाले के जीवन में ही हो चुका था. अब उनके बाद इसकी कमान फारुख अब्दुल्ला के हाथ में चली जायेगी और 'खालिस्तान के आंदोलनकारी' संत भिंडरांवाले की जगह फारुख अब्दुल्ला की तस्वीर लेकर आगे बढ़ेंगे.'

—शेख सलीम अहमद द्वारा प्रस्तुत

नारी जगत

उत्पादकों की उत्पादक स्त्री

और उसकी मुरझाती खेती

मृणाल पांडे

भारतीय पुरुष के मन में नारी के दो ही रूप रहे—या तो मुफ्त की उस बीमारी का जो हंस-हंस कर बस साड़ियां भर बदलती रहती है, या फिर उस सन्नारी का जो व्यथा की पोटली है. बहुत कुछ बदल गया, लेकिन आज भी भारतीय स्त्री की नियति नहीं बदली है.

अपने देश में जो लोग विश्व के दैहिक-दैविक-भौतिक तापों का कारण स्त्री को मानते हैं, जिनका दृढ़ मत है कि स्त्री का जन्म ही सृष्टि को पथभ्रमित करने को हुआ है और जो कन्या के जन्म को परिवार के लिए कुर्की की डिक्री से कम नहीं मानते उन्हें यह जानकर शायद हर्ष हो कि अपने भारत देश में स्त्रियों की तादाद सचमुच घट चलीं है और यह तथ्य कोई सुनी-सुनाई बात नहीं; संयुक्तराष्ट्र के बाल शिक्षा एवं कल्याण संगठन की नवीनतम रपट में दर्ज है.

दुनिया के तमाम विकसित और अविकसित मुल्कों में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते' वाला अपना प्यारा हिंदोस्तां ही है, जिसने अपनी आबादी की बीहड़ बढ़ोतरी के बावजूद सन् 1901 के उस लिंग-आधारित अनुपात को जिसके अनुसार देश में हर 1000 पुरुषों के पीछे 972 स्त्रियां थीं, घटाकर 1000 पुरुषों के पीछे 935 स्त्रियों में तब्दील कर दिया है. यह उल्लेखनीय है कि प्राकृतिक नियमों के अनुसार अपने देश में भी शेष दुनिया की ही तरह मूल जन्म दर में लड़कों तथा लड़कियों का प्रतिशत बराबर होता है. पर लड़की के जन्म के साथ ही जो धिक्-धिक् का भारतीय सिलसिला उसके साथ शुरू हो जाता है उसके चलते जो लड़कियां बचपन किसी तरह गुजार भी लेती हैं उनमें से अनेक, 15 से 29 वर्ष की आयु के बीच, कुपोषण, निरंतर जचगियों, पारिवारिक अवहेलना और स्वयं के कष्टों को छिपा कर रखने की (बहुप्रशंसित) प्रवृत्तिवश, दुनिया छोड़ने को बाध्य होती हैं.

27 अगस्त के अखबारों में एक खबर थी कि देश की राजधानी में एक युवती माता ने दोबारा कन्या पैदा होने के दुःख से आत्महत्या कर ली; यानी अपने देश में स्त्री के लिए खुद का स्त्री होना तो ग्लानिजनक बना ही दिया गया है, एक कन्या को जन्म देना तो मानो एक अक्षम्य दोष हो जाता है. ऐसा क्यों है? अंतरराष्ट्रीय महिला दशक अब लगभग खत्म होने को आया है और इन दस वर्षों में स्त्रियों की स्थिति को लेकर हजारों की तादाद में गोष्ठियां हुईं, पर्चे पढ़े गये, नारे लगे और अनुदान वितरित हुए. पर इसके बावजूद बलात्कार, छेड़छाड़, दहेज की खातिर बहुओं की हत्या की घटनायें—कहीं भी तो कमी नहीं आयी. कमी आयी तो स्त्रियों की तादाद में. न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी!

दरअसल, अपने यहां समाज के शक्ति-संतुलन और स्त्रियों को लेकर जो मूल अवधारणाएं हैं भारी गड़बड़ कहीं उन्हीं में है. (यहां यह कहना जरूरी है कि बड़े पैमाने पर भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में औरतों की भागीदारी भी एक 'फ्रीक' या असामान्य घटना से बढ़ कर नहीं; गो औसतन अपने यहां स्त्री-विमुक्ति या स्त्री की दशा के प्रति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सदयता की शुरुआत प्रायः वहीं से मानी जाती है.) यह एक तरह से औरतों का दुर्भाग्य ही था कि उनकी आजादी की बात घर के, समाज के क्षेत्र से सहज उत्पन्न हो कर राष्ट्रीय आजादी से नहीं जुड़ी, बल्कि बाहरी राजनैतिक क्षेत्रों में राष्ट्रीय आजादी के संदर्भ में ही परिभाषित और व्यक्त की गयी. स्व. सुभद्रा कुमारी चौहान की पुत्री सुधा चौहान ने अपनी मां की जीवनगाथा में अनेक उदाहरण गिनाये हैं, कि जनसामान्य तो दूर, खुद राष्ट्रीय आंदोलन के पुरोधाओं के बीच भी स्त्री-हरिजन के प्रति अवहेलना भाव कम न था. जो नेता बाहर मंच पर जातिवाद मिटाने की कसमें खाते रहे उनके वैयक्तिक जीवन में छुआछूत का खूब बोलबाला था और उनकी स्त्रियों का जीवन राष्ट्रीय आदर्शवाद से कतई अछूता ही रहा आया और ब्रह्म समाज जैसे आंदोलनों के बावजूद बंगाल में स्त्री की जो स्थिति थी वह रवींद्रनाथ ठाकुर की कहानियां भली प्रकार उजागर करती हैं.

स्वतंत्रता आंदोलन में जिन स्त्रियों ने भाग लिया वे प्रायः मध्य वर्ग और उच्च-मध्य वर्ग की थीं और उनमें से भी अधिकतर परिवार से विद्रोह करके नहीं बल्कि अपने माता-पिता-पुत्र के पगचिन्हों का अनुसरण करके (प्रायः उनके आदेश से) ही राजनीति तक आयी थीं. अनपढ़ ग्रामीण स्त्रियों का प्रतिनिधित्व तब भी इसमें तकरीबन नहीं के बराबर रहा. कहना न होगा कि स्वतंत्रता पा लेने के बाद इन स्त्रियों को भी राजनीति से या तो नाता तोड़ते देखा गया, या फिर उन्हें कला, संस्कृति और समाजकल्याण जैसे महकमों में छोटे-मोटे, निरापद ओहदे देकर पुचकार दिया गया. बतौर क्रांतिकारी, बतौर स्वतंत्रता सेनानी, बतौर स्वतंत्र चिंतक भारतीय समाज का जो चेहरा सामने उभरा वह पुरुष का ही था, स्त्री का नहीं.

आज गांवों में सबसे अधिक तादाद में कामकाजी स्त्रियां हैं और वे स्त्रियां खेती के धंधों में लगी हैं. आंकड़ों की छानबीन करने पर हम पाते हैं कि उनकी कुल तादाद जो बढ़ती दिखती है वह कतई भ्रामक है; इसलिए, क्योंकि संख्या भूमिहीन मजदूरिनों की बढ़ी है, जब कि जमीन पर स्वामित्व रखने वाली स्त्रियों की तादाद घटी है. इसी तरह शहरों में काम करने वाली स्त्रियों में अधिकतर स्त्रियां अनियोजित सेक्टर में ही हैं, जहां उनके हकों और कानूनी संरक्षण का सवाल ही नहीं है. उच्च-पदस्थ स्त्रियों की संख्या अभी भी बहुत

कम ही है और अंतर सिर्फ हुआ है उन्हीं मध्यवर्गीय कामकाजी स्त्रियों की स्थिति में जो नियोजित सेक्टर में हैं और जिन्हें भरपूर आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त है. उच्चवर्गीय परिवारों में भी घर बैठ कर पति की कमाई पर आश्रित स्त्री की स्थिति या उसके बारे में समाज का रवैया वही हिकारत का है. यह बात और है कि उन्हें अच्छा खाने-पहनने को मिलता है, अतः उनकी स्थिति का दारिद्र्य बाहरी तौर से उतना उजागर नहीं है.

मुझे बखूबी याद है कि जब मैं छोटी थी उस वक्त कुछ हिट गाने, जो हंस-हंस कर मध्य वर्ग में गाये और सुने जाते थे, यों थे : 'आजकल की नारियां, हैं मुफ्त की बीमारियां, काम कुछ करती नहीं और बदलती साड़ियां. . .' एक और मशहूर गाना कुछ इस तरह का था, कि 'भारत की इक नारी की हम कथा सुनाते हैं— फलां फलां के जीवन की हम व्यथा सुनाते हैं ...' **यानी नारी के दो ही रूप हैं—या तो मुफ्त की उस बीमारी का जो हंस-हंस कर बस साड़ियां भर बदलती रहती है, दूसरा उस सन्नारी का जो व्यथा की पोटली है.**

क्या आज भी भारतीय समाज स्त्री से यही नहीं चाहता है कि वह इन्हीं दो में से किसी एक खांचे में ढल जाये? अच्छी मानी जाने के लिए स्त्री का स्त्री होना ही पर्याप्त नहीं, 'स्त्रियोचित' गुणों का होना भी जरूरी बताया जाता है. इन गुणों की पड़ताल आप करेंगे, तो पायेंगे कि वे तमाम गुण, एक मनुष्य की स्वाभाविक शारीरिक और मानसिक ऊर्जा को कुंठित कर, उसे एक आदर्श गुलाम के रूप में ढालने वाले दबाव हैं; सचमुच के वे तत्त्व नहीं जो व्यक्तित्व को मजबूत बनाते हैं. वर्ना पुरुष के संदर्भ में 'स्त्रैण' या 'जनानियों जैसा' होना एक गाली क्यों माना जाता? क्यों स्त्रियों को सदा सिर झुकाकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विनयपुंज बन जाने को और पुरुषों को 'मर्दों वाले जुझारू तेवर' दिखा कर संसार से जूझने को कहा जाता? और तो और, काम-धंधा या पेशा जैसे शब्द, जो कामकाजी पुरुष के संदर्भ में मर्दानगी, अकड़ और सम्मान की ध्वनि लिये हुए हैं, एक कामकाजी स्त्री के संदर्भ में अपमानसूचक बन जाते हैं—'वह धंधे पर निकली है' या 'पेशेवर है'—यानी कि वह वेश्या है! अंग्रेजी में अलबत्ता कुछ हद तक शब्दों के वजन बदले हैं—यानी आज से चालीस साल पहले 'दि प्रोफेशनल वूमन' का सीधा अर्थ था वेश्या. आज वह उस कामकाजी महिला का सीधा सूचक है जो वकील, डाक्टर, प्रोफेसर, इंजीनियर या किसी सम्माननीय विशिष्ट पेशे से जुड़ी है. पर इसी प्रोफेशनल शब्द का तर्जुमा 'पेशेवर' शब्द भी वेश्यावृत्ति की ध्वनि लिये है. खैर, इस पर फिर कभी.

मेरे विचार में स्त्री की दशा सुधारने की सही पहल अपने यहां तभी हो सकती है जब कि हम सबसे पहले इस बात को स्वीकार करें कि इस क्षेत्र में अपने समाज के मन, वचन तथा कर्म की जड़ें एक बहुत महीन लैंगिक राजनीति में हैं, जिसमें स्त्री के प्रति रुख में सदा से खोट रहा है. हर बार की तरह, फुर्ती से पैंतरा बदल कर, यहां कई लोग हमारा ध्यान उस युग की ओर खींचेंगे जब भारत सोने की चिड़िया था और लोग घरों में ताले नहीं लगाते थे और गार्गी-मैत्रेयी-अपाला वगैरह-वगैरह समेत स्त्रियों को देवी का ओहदा, बिना झिझक, सौंप दिया गया था.

इस पर मेरा कहना है कि अव्वल तो हमारे पास खुद स्त्रियों की ओर से इस मनोमुग्धकर मिथक की पुष्टि का कोई प्रमाण नहीं; दूसरे द्रौपदी, दमयंती, अहिल्या, सीता जैसी नारियों की भीड़ भी हमारे उन्हीं आख्यानों में निरंतर मौजूद है जिनके प्रति न केवल जो अत्याचार हुए वे पुरुषों की ओर से हुए बल्कि उनको जिस अदालत में जांचा गया वहां जज और वकील दोनों ही पुरुष रहे आये. इसी से, पुरुष का दोष स्पष्ट होते हुए भी, कभी कैकेयी के स्त्री हठ, तो कभी गांधारी के अंधे पुत्र मोह, तो कभी दुर्वासा के शाप का बहाना लेकर उल्टे मामला स्त्रियों के खिलाफ बना दिया गया. क्या दुष्यंत, धृतराष्ट्र और दशरथ अपने बहुविवाहों और हरम की स्त्रियों के प्रति घोर भेद-विभेद के दोषी न थे? पर यहां आते-आते नारे लगा दिये गये कि धन्य हैं वे जो इन स्त्रियों का उद्धार और उन्हें क्षमा कर रहे हैं. (कहना न होगा कि क्षमाकर्त्ता-उद्धारकर्त्ता भी हमेशा कोई नरपुंगव ही होता है).

यह लैंगिक राजनीति क्या आज की उस व्यापक राजनीति से किन्हीं अर्थों में कम शातिर और कूटबुद्धियुक्त है जिसके रहते कांग्रेस, माकपा, भाकपा, जनता सबके द्वारा सामान्य मतदाताओं के सवाल उठाने पर भी अपनी सत्ता के पक्ष में जोरदार नारे लगा कर ऐसा घटाघोप बना दिया जाता है कि जब तक लोग संभलें, एक रंगीन विज्ञापन आंखों के आगे चालू हो जाता है, कि सारे जहां से अच्छा.

यह लैंगिक राजनीति है क्या और किन रूपों में व्यक्त होती है? हमारे भारतीय समाज में पुरुषों का जो लंबा शासन भौतिक तथा मानसिक क्षेत्रों में रहा है उसके तले यही तालीम भारतीयों को सदा दी जाती रही कि वे चाहें स्त्री हों या पुरुष उनका नैतिक कर्त्तव्य है कि पुरुषसम्मत, पुरुषप्रेरित तथा पुरुष-पोषित इस शासन के स्थायित्व को पुख्ता बनाने की दृष्टि से हर काम करें. हमारे दर्शन, धर्म, साहित्य और राजनीति में इसलिए स्त्री को पुरुष की ही तरह एक मनुष्य मानकर देखने वाली दृष्टि सामान्यतः नदारद रही है.

विजय तेंडुलकर का नाटक 'कमला' अखबारनवीसों द्वारा स्त्री के शोषण को भुनाने का भयावह रूप से सच्चा चित्र खींचता है. आप गौर करें तो पायेंगे कि पिछले दस सालों में पत्र-पत्रिकाओं में स्त्री से जुड़ी जिन घटनाओं की चर्चा हुई है वे सभी प्रायः हिंसा, बलात्कार, जिंदा जलाये जाने या फिर और जघन्य अपराधों से सीधे जुड़ी हुई थीं. स्त्री और कन्या मृत्यु दर बढ़ोत्तरी, स्त्री-मजदूरों को सरकारी-गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा पुरुषों से लगातार कम वेतन भुगतान किये जाने की वारदातें, ईंट भट्टों, निर्माणकार्यों में आदिवासी स्त्रियों का शोषण, निचले तबकों की कामकाजी औरतों, खेतिहर मजूरिनों, भंगिनों, रद्दी बीनने वालियों, उनसे कुछ ऊपर निम्न मध्यम वर्ग की पढ़ी-लिखी, कामकाजी औरतों, जैसे नर्सों, टेलीफोन ओपरेटरों, स्टेनोग्राफरों के खुले यौन उत्पीड़न, इन मुद्दों पर चटखारेदार इक्का-दुक्का स्थानीय पेज पर छपे न्यूज आइटमों के अलावा गंभीर सुविचारित सामग्री-संपादकीय कितने लिखे गये?

किसी भी समाज में अगर पुरुष वर्ग की ताकत स्त्रियों द्वारा अपने अधिकारों के त्याग से अतिरिक्त शक्ति ग्रहण करती हो तो दबी हुई स्त्रियों द्वारा तनिक भी सर उठाने से समाज का इंद्र सिंहासन तुरंत डगमगा जाता है. समाज बदला लेता है, शुरू में व्यंग्य और उपहास से (देखें वे दर्जनों कार्टून जिनमें एक झगड़ालू पत्नी पति को बेलन दिखा रही है, जब कि वस्तुस्थिति क्या है यह सभी जानते हैं). स्थिति थोड़ी और गंभीर हो गयी तो प्रतिहिंसात्मक कार्रवाई शुरू हो जाती है, जिसमें भद्दे इशारों से लेकर बलात्कार तक शामिल है. आज अपने यहां सत्तर प्रतिशत औरतें तो खैर इस हालत में हैं ही नहीं कि इस स्थिति के प्रतिकार में तनिक भी गर्दन उठायें, पर शेष तीस प्रतिशत में जो पढ़-लिख कर सत्य को समझ और उसे व्यक्त करने का साहस रखती हैं उनके विरुद्ध समाज के व्यंग्य, उपहास और प्रतिहिंसात्मक आक्रोश की सीमा नहीं. भीड़ भरी बस में सवारी करने वाली, या रात को देर तक नाइट शिफ्ट में काम करने वाली किसी भी युवा पढ़ी-लिखी दीखने वाली स्त्री से पूछिए कि घर से कालेज या दफ्तर पहुंचते-पहुंचते वह कैसी शारीरिक-मानसिक जलालतों से गुजरती है. प्रायः तर्क दिया जाता है कि वे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जरूर 'छेड़े जाने योग्य कपड़ों में होंगी;' यानी पहले से ही भाई लोग मान बैठे हैं कि दोष लड़की का ही होगा, क्योंकि वह घर से बाहर जो निकली है. उसे कहा जाता है कि निकले तो दबी-ढंकी, या बहुत करके भाइयों-पड़ोसियों के संरक्षण में. एकाध बार भाइयों और उनके दोस्तों द्वारा विपक्ष की प्रतीकात्मक धुनाई भी कर दी जाती है—पर यह स्मरण रहे कि यह सरेआम धुनाई स्त्री की इज्जत के सवाल को लेकर नहीं, बल्कि बाप-भाई की संयुक्त इज्जत, यानी खानदान की नाक को बचाने के लिए की जाती है.

और तो और, स्त्री शक्ति की पूंजीभूत स्रोत देवी दुर्गा के पूजन (अर्गला) स्तोत्र में भी पुरुष भक्त द्वारा यही विडंबनापूर्ण प्रार्थना की गयी है, कि हे देवी, मुझे ऐसी पत्नी दो जो सुंदर हो, मेरी इच्छानुसार आचरण करे, इस दुर्गम संसार रूपी सागर से (पुत्रोत्पत्ति द्वारा) मेरे तिरने का प्रबंध करे और अच्छे कुल में पैदा हुई हो:

'पत्नीं मनोरमां देहि, मनोवृत्तानुसारिणीं,
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवां॥'

हमारा शक्ति पूजन भी कैसा है? देवी के मंदिर की पूजा करते हैं, तो हमारे पुरुष शक्ति साधना करते हैं. क्या 'शक्ति' की अवधारणा का इस्तेमाल भी हमारे यहां पुरुष की शक्ति को बढ़ाने के एक तरीके के रूप में अधिक और स्त्री को ऊंचा मानने के बारे में बेहद कम नहीं हुआ है? वर्ना शक्ति पूजा के गढ़ बंगाल और बिहार में स्त्रियों की अधिकतम दुर्दशा क्यों?

पितृसत्तात्मक समाज की हर पद्धति का मूल ध्येय देवी की ही नहीं, सामान्य स्त्री की शक्ति को भी (वह चाहे संतानोत्पत्ति की हो, या कामकाज संबंधी ऊर्जा) पुरुष के हित में, नियोजित करने का होता है. इसी से स्त्री को हमारे यहां हमेशा एक प्रकार की संपत्ति के रूप में देखा गया है और उसकी सुरक्षा, हस्तांतरण, सार्वजनिक प्रदर्शन और अभिवृद्धि (पैसे से पैसा जुड़ता है, स्त्री से कुल आगे बढ़ता है) के प्रबंध किये गये. इसके सैकड़ों उदाहरण भाषा में मौजूद हैं. स्त्री का ही 'कन्यादान' होता है. स्त्री को ही पहले पिता, फिर पति और फिर पुत्र के संरक्षण में रहने की सीख दी जाती है. स्त्री को ही पितृकुल की संपत्ति में उस सहदायिक अधिकार का भागी नहीं माना जाता जो पुत्र को जन्मना प्राप्त है.

यहां कुछ रुक कर मैं एक अन्य पारंपरिक मिथक या झूठ को उजागर करना जरूरी समझती हूं. वह मिथक है 'स्त्रीधन' का. 'स्त्रीधन' अर्थात वह संपत्ति (जो प्रायः गहने तथा कपड़े के ही रूप में होती है) जो स्त्री को विवाह के समय दी जाती है; उसके भाइयों को मिलने वाली पैतृक संपत्ति (जो प्रायः खेती, जमीन या नकद राशि के रूप में होती है) में बाप की ऐंचक में. कहा जाता है कि वह धन स्त्री का नितांत 'अपना' है. पर सचमुच एक स्त्री की दृष्टि से देखा जाये तो उस 'स्त्री धन' का क्या उसे कोई लाभ अपने लिए कभी भी मिल पाता है?

सबसे पहले तो यही स्त्रीधन दहेज का रूप बदल कर सीधे ससुर कुल द्वारा 'उत्कोच' या घूस की तरह जबरन वसूल किये जाने की भयावह संभावना बनती है, जिसका दानवी स्वरूप आज किसी से छुपा नहीं. फिर माना कि सौ में से पचास मामलों में स्त्री को यह तथाकथित स्त्रीधन विवाह के बाद मिल भी गया, तो उसका उपयोग वह क्या करती है भला? अर्थशास्त्र की भाषा में कहा जाये तो स्त्री के लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा के गलत तरीकों के कारण यह धन स्त्री के हाथों में एक तरह की मृत पूंजी बन जाता है, जिसका न तो वह खुद अपनी सूझ-बूझ से निवेश कर सकती है और न ही खुलकर अपने और अपनी बेटियों के लिए उसका उपयोग. कुछ लोग कहेंगे कि इसी धन से तो कई विधवाओं ने अपने बेटों को पढ़ाया, बेटियों की शादी की, सचमुच ने "गृहस्थी" की डूबती नाव बचायी, वगैरह. तो सवाल यह उठता है कि अव्वल तो खुद वे गरीब विधवा की विधवा ही रहीं, दूसरे उसका समुचित फायदा भी तो अंततः पति-पत्नी को ही हुआ—चाहे पारिवारिक बिजनेस को बचाने के रूप में हो या ऊंची शिक्षा के रूप में!

हमारे यहां दिक्कत यह है कि पारंपरिक तौर से समाज और धर्म दोनों के ही अगुआओं ने इसी लैंगिक राजनीति के तहत धर्म, अर्थ और काम तीनों क्षेत्रों में स्त्री में हमेशा हताशावाद और निष्क्रियता को ही काम्य माना और उन्हें कड़ी परवरिश द्वारा मानने को बाध्य किया कि पारिवारिक दुःखों और बाधाओं से सक्रिय रूप से जूझने के बजाय वे पुरुषों के हित के लिए उनकी इच्छानुसार सब कुछ अर्पण कर, खुद चुपचाप स्थिति को सहती रहें. तभी वे महान हैं. आज इस विचारधारा की शाखाएं, प्रचार माध्यमों से लेकर सिनेमा और स्कूली पाठ्यपुस्तकों से लेकर कला समालोचना तक के क्षेत्र में गहरे से जड़ जमा कर बैठी दीख जायेंगी. चाहे बीबी और टी.वी. के दहेज में एक सख्त आने का भद्दा इश्तहार हो, या फिल्मों में आंगन की तुलसीनुमा नारी, या पिता के मन भाये सो ही दुल्हन रूपों का गुण-बखान, या कि अखबारों में स्त्री-संबंधी घटनाओं का आकलन, सबमें आपको स्त्री का मनुष्य रूप में नकार ही दीखेगा. उन्हें स्वीकार है तो सिर्फ मां या पत्नी के "रोल" का; वह भी विशुद्ध पारिवारिक संदर्भों में ही, स्त्री के निजी संदर्भ में कभी नहीं. ■

अरब देशों में औरत

अगर जुडिथ महिला पत्रकार नहीं होतीं...

क्या सचमुच अधिकतर अरब देशों में औरत की स्थिति गुलामों जैसी है? अमेरिकी महिला पत्रकार जुडिथ को वहां एक साल के प्रवास के दौरान हासिल अनुभव तो यही कहते हैं.

संतोष तिवारी

'यहां स्त्री स्वातंत्र्य की वकालत करने वाली इतनी औरतें भी नहीं हैं कि एक वालीबाल टीम बन सके.' साऊदी अरब में औरतों की स्थिति के बारे में एक पश्चिमी कूटनीतिज्ञ की यह टिप्पणी चाहे मजाक में की गयी लगती हो, पर है काफी कुछ सटीक. पिछले दिनों एक अमेरिकी महिला पत्रकार जुडिथ मिलर ने, साऊदी अरब समेत चौदह अरब देशों में कोई एक साल बिताया. इस दौरान एक औरत होने के नाते उन्हें जो अनुभव हुए वे उनके अपने लिए तो काफी नये और चौंकाऊ हैं ही, वहां के समाज में औरतों की हालत की जीती-जागती तस्वीर पेश करने वाले भी हैं.

अपने औरत होने का अहसास जुडिथ को अपनी यात्रा के पहले दिन से ही होना शुरू हो गया. उनको अविवाहित जानते ही लोग उनसे तरह-तरह के सवाल करने लग जाते और उनकी अपनी बातें पीछे छूट जातीं. लोग उनसे बहुत सी उत्सुकताएं प्रकट करते; मसलन, अभी तक उनकी शादी क्यों नहीं हुई? उनकी जिम्मेदारी उठाने वाला कौन है? वह क्या अकेली ही अरब देशों की यात्रा पर निकल पड़ी हैं? क्या वह सचमुच निपट अकेली हैं? वगैरह-वगैरह.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ये सवाल सीधे-सीधे उनके निजी जीवन से ताल्लुक रखने वाले थे और अमेरिका के आजाद समाज की आदी जूडिथ को शुरू-शुरू में उनसे काफी परेशानी भी हुई. फिर उन्होंने इसका एक हल खोज लिया. वह शादी-शुदा बन बैठीं. केवल शादीशुदा ही नहीं, बाकायदा दो बच्चों की मां. उनका काल्पनिक पति जार्ज वाशिंग्टन में बच्चों के साथ रहता था. इस मनगढ़ंत किस्से का फायदा उन्हें फौरन मिला. पहले किसी से बातचीत करते हुए उनका प्रायः आधा समय फालतू की बातों में बीत जाया करता था. अब उसके बजाय सीधे वहां के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या जो भी विषय होता उस पर हर किसी से उनकी जमकर बातचीत होती.

उनके अविवाहित होने को लेकर साऊदी लोगों में उत्सुकता का कारण, जूडिथ के अनुसार, वहां के समाज का अंदरूनी ढांचा है और जहां एक औरत का अकेले आजादी से घूमना-फिरना काफी चौंकाने वाली बात है.

जूडिथ ने अरब के कुल 14 देशों की यात्राएं की हैं, जिनमें औरतों के प्रति संकरा सामाजिक नजरिया उन्हें प्रायः सभी जगह नजर आया. पर साऊदी अरब में तो उन्हें अद्भुत ही अनुभव हुआ. उनके अनुसार : 'साऊदी अरब अकेला देश है, जिसमें महज एक औरत होने के कारण मुझे एक पत्रकार के रूप में अपना काम करने नहीं दिया गया.'

यों वहां बहुत से लोगों से उनकी बड़ी अंतरंग बातचीत हुई. कुछ लोगों के न्यौते पर वह उनके घर खाने पर भी गयीं और वहां विकास कार्यों, फिल्मों तथा इस्लाम वगैरह पर जम कर चर्चा भी हुई. पर उनके शुभचिंतक भी उन्हें कुछ जगहों पर जाने की अनुमति दिलवाने में सफल नहीं हो सके. जैसे, जब वह जुबैल औद्योगिक क्षेत्र में प्रशासनिक भवन में जाना चाहती थीं तो उन्हें अनुमति नहीं दी गयी, क्योंकि वहां केवल पुरुष काम करते थे और औरतों के जाने की मनाही थी. उसी तरह हयात रीजेंसी होटल के, जहां वह ठहरी थीं, स्वीमिंग पूल में नहाने की इजाजत उन्हें नहीं मिली; दिन या रात किसी भी वक्त नहीं. हां, पुरुष उसका इस्तेमाल कभी भी कर सकते थे.

साऊदी अरब में हैरतअंगेज अनुभव जूडिथ को तब हुआ जब एक अमेरिकी कलाकार की प्रदर्शनी देखने के लिए वह एक रात अकेली पैदल ही होटल से निकल पड़ीं. ड्राइवर को वह छुट्टी दे चुकी थीं और होटल में टैक्सी थी नहीं, इसलिए इसके सिवाय कोई चारा भी नहीं था. पूछते-पूछते वह बस स्टाप पर आयीं. वहां उन्हें बताया गया कि बस में औरतों के बैठने की जगह पीछे होती है. बहरहाल, बस आयी और वह चढ़ गयीं. पर उनके चढ़ते ही ड्राइवर ने एकाएक बस रोक दी और चीखने लगा. एक दूसरे यात्री ने उत्तेजना में भर अपना रूमाल उनके चेहरे पर फेंक दिया. तब उन्हें अपनी गलती महसूस हुई, कि वह बस में आगे के दरवाजे से चढ़ आयी हैं, जो कि औरतों के लिए मना है.

इस कार्रवाई से बुरी तरह अपमानित जूडिथ बस के पीछे हिस्से में पहुंची. वहां बुर्का पहने हुए केवल एक औरत बैठी हुई थी. उसने बताया : 'आप समझिए, हम बहुत सौभाग्यशाली हैं, जो हमें बस पर जाने की छूट है. धार्मिक मंत्रालय तो चाहता है कि हम दूर से दूर रहें.' उसने बताया कि वह लड़कियों के एक स्कूल में पढ़ाती है. यह काम उन चुनिंदा कामों में से है जिसे साऊदी अरब में औरतें कर सकती हैं.

दिलचस्प बात यह है कि खुद वहां की पढ़ी-लिखी औरतें भी अपने प्रति अपनाये जा रहे इस संकरे सामाजिक रुख की आलोचना सुनने को तैयार नहीं हैं; कम से कम अमेरिकियों से तो कतई नहीं. अमेरिका में पढ़ी एक साऊदी समाजशास्त्री ने जूडिथ से कहा: 'यह सही है कि जिस आजादी का मजा मैंने अमेरिका में रह कर लिया वह यहां नहीं मिल सकता. लेकिन मैं साऊदी पहले हूं, औरत बाद में.' दूसरे साऊदियों की तरह वह भी पश्चिमी लोगों से चिढ़ती थी, जो, उसके ख्याल से, उसके देश को पिछड़ा मानते हैं.

जूडिथ के मताबिक लेबनान अकेला ऐसा देश है जहां उन्हें अपने औरत होने की वजह से खास बंदिशों का सामना नहीं करना पड़ा. ■

विज्ञान

परखनली शिशु तकनीक

मानव भ्रूण पर शोध कितना नैतिक

परखनली की सहायता से बच्चे पैदा करने की तकनीक ने जहां एक ओर खासी लोकप्रियता हासिल कर ली है वहां वह विवादों के घेरे में भी घिरती चली जा रही है. ऑस्ट्रेलिया की डा. रोबिन रोलैंड जैसी चिकित्सकों को आपत्ति है कि डाक्टरों ने स्त्री देह को एक प्रयोगशाला का रूप दे दिया और उधर परखनली शिशु तकनीक की यह कहकर हिमायत की जा रही है कि निःसंतान दंपतियों के लिए यही एक मात्र आशा है तथा इस तकनीक की नित नयी विधियां खोजी जा रही हैं.

पश्चिम में 'एक या दो, बस' का चलन इतना बढ़ गया है कि निःसंतान माता-पिताओं को गोद लेने के लिए भी बच्चे नहीं मिलते. इसी लिए परखनली शिशु तकनीक एक उद्योग के रूप में पनप रही है. इस समय लगभग 11 तरह की विधियां उपलब्ध हैं, जिनसे बच्चे पैदा किये जा सकते हैं. मर्द में दोष है, तो वीर्य बैंक से स्वस्थ शुक्राणु ले लीजिए. औरत बांझ है, तो उसके डिंब लेकर उसी के गर्भाशय में रोपे जा सकते हैं. गर्भ ठहरता ही नहीं तो गर्भ ढोने के लिए किराये पर धाय मां लीजिए, जो आपके लिए नौ महीने गर्भवती बनी रहेगी और पैदा होते ही बच्चा आपका. डिंब ही नहीं बनते, तो वे भी दूसरी स्त्री से लिये जा सकते हैं. अगर कोई स्त्री परखनली शिशु को अपनी ही कोख से जन्म देना चाहती है और इस साल फुरसत नहीं है तो तब तक के लिए वह भ्रूण फ्रीजर में जमा कर खुला दिया जायेगा. असल में आप चाहें कि आपका बच्चा आज से सौ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वार्नोक

मार्शल

भ्रूण को जीवित रहने का अधिकार कबसे है ?

साल बाद पैदा हो तो भ्रूण बैंक में जमा कर रखवा सकते हैं.

इससे भी बढ़कर करिश्मा यह है कि दुनिया से कूच करने के बाद भी कोई चाहे तो बच्चे पैदा करना जारी रख सकता है. शुक्राणु बैंक में रखवाया गया वीर्य मृत व्यक्ति की पत्नी को उपलब्ध रहेगा और चाहे तो उसकी सुई लगवा वह गर्भवती बन सकती है. फ्रांस में एक विधवा का इसी तरह का आवेदन इन दिनों अदालत की चौखट खटखटा रहा है. वह बच्चा भले ही उसके स्वर्गीय पति के शुक्राणुओं से ही पैदा होगा फिर भी कानून की निगाह में अवैध होगा. लगभग सभी देशों में कानून विज्ञान के साथ-साथ न दौड़ पाने के कारण पिछड़ गया है और कृत्रिम गर्भाधान से पैदा या परखनली शिशु तब तक वैध नहीं माने जाते जब तक गोद न लिया जाये.

भ्रूण अनुसंधान को लेकर भी इस समय विज्ञान जगत में तहलका मचा हुआ है. ब्रिटेन की वार्नोक कमेटी की रपट ने इस आग में घी का काम किया है. इस रपट में कहा गया है कि वैज्ञानिकों को चौदह दिन से ज्यादा के भ्रूण से छेड़छाड़ की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए. कमेटी की अध्यक्ष डा. डेम मेरी वार्नोक का कहना है कि 14 दिन के भ्रूण में जन्मजात आनुवंशिक विकारों का पता लगाया जा सकता है, जीनों का हेरफेर करके देखा जा सकता है और हृदय या तंत्रिका विकारों के उपचार में प्रत्यारोपण के लिए वांछित ऊतक भी मिल सकते हैं.

उधर वैज्ञानिकों में असंतोष है कि डेनमार्क में यह सीमा 21 दिन की है. इसके जवाब में वार्नोक का कहना है कि अमेरिका, जापान तथा स्वीडन आदि यूरोपीय देशों में भी 14 दिन ही दिये जाते हैं और आस्ट्रेलिया में तो 7 दिन से अधिक उम्र के भ्रूण को छेड़ना अपराध माना जाता है. यहां पर वैज्ञानिकों का यह कहना है कि 7 दिन के बाद भ्रूण गर्भाशय की भित्ति से चिपक सकता है, इसलिए सात दिन के बाद उसे सजीव मानना चाहिए.

लेकिन इन सभी तर्कों को नकारने वाले भी वैज्ञानिक हैं, जो मानते हैं कि जिस दिन शुक्राणु और डिंब का समागम हुआ तभी से 'जीव' पलने लगा. इसलिए इन तमाम प्रयोगों पर पाबंदी लगनी चाहिए जिनमें ईश्वर के इस विधान में दखल दिया जाता है. इस मत के प्रतिपादकों में तीन 'वार्नोक कमेटी' के 16 सदस्यों में शामिल हैं. इनमें प्रमुख हैं डा. जान मार्शल, जो लंदन के न्यूरोलोजी इंस्टीट्यूट में प्रोफेसर हैं. उनका कहना है कि "जो चीज आगे चलकर व्यक्ति बन सकती है उसे हम कैसे नष्ट कर सकते हैं?" वैज्ञानिकों का एक और वर्ग 17 दिन की सीमा उचित मानता है, क्योंकि भ्रूण में तभी पहली तंत्रिका ऊतक का जन्म होता है. इनका कहना है कि जब मौत का फैसला 'मस्तिष्क की मृत्यु' से करते हैं तो जीवन भी तभी आरंभ हुआ मानना चाहिए जब भ्रूण में मस्तिष्क से जुड़े पहले तंतु का श्रीगणेश हुआ.

वार्नोक समिति ने यह भी सिफारिश की है कि परखनली में भ्रूण संबंधी परीक्षणों के मामले तय करने के लिए एक वैधानिक संगठन बनाया जाये. इसका अध्यक्ष कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसका वैज्ञानिक अनुसंधान से कोई सरोकार न हो, यानी जो आम आदमी और समाज के हितों का ज्यादा ध्यान रखे. बिना इस संगठन की अनुमति के भ्रूण पर खोज करना तो, हर हालत में, अपराध माना जायेगा. अमेरिका में यह काम 'नेशनल इंस्टीट्यूट आफ हैल्थ' सन् 1979 से कर रहा है. अमेरिकन फर्टिलिटी सोसायटी ने भी भ्रूण अनुसंधान की एक आचार संहिता बनाकर जारी की है, जिसमें भ्रूण प्रत्यारोपण के लिए 14 दिन का भ्रूण स्वीकार किया गया है. जापान में नौ प्रयोगशालाओं में परखनली शिशु और भ्रूण संबंधी शोध चल रही है. तोहोकू यूनिवर्सिटी के डा. मासाकूनी सुजुकी का इस क्षेत्र में बड़ा नाम है. जापान के नौ परखनली शिशु में से चार डा. सुजुकी ने ही पैदा किये थे. यहां भी 14 दिन की सीमा है. लेकिन उधर स्वीडन में 14 दिन की सीमा बढ़ाकर 21 दिन करने पर जोर दिया जा रहा है. हौलैंड और फ्रांस में इस मसले पर गौर करने के लिए दो समितियां बिठा दी गयी हैं, जो इस वर्ष के अंत तक रपट पेश करेंगी.

आस्ट्रेलिया इस समय इस वैज्ञानिक क्षेत्र में सबसे आगे है. वहां पहले से ही सात दिन के भ्रूण पर ही अनुसंधान की सीमा चल रही है, जिसके बारे में आस्ट्रेलिया 'नेशनल-हैल्थ एंड मेडीकल रिसर्च कौंसिल' की परखनली अनुसंधान समिति के अध्यक्ष प्रो. रिचर्ड लोवैल का कहना है कि "7 दिन का भ्रूण इतना परिपक्व नहीं होता कि उसे व्यक्ति की संज्ञा दी जा सके." परंतु परखनली शिशु अनुसंधान में अग्रणी वैज्ञानिक प्रो. कार्ल वुड इससे संतुष्ट नहीं हैं. उनका कहना है कि "14 दिन की सीमा भी कम है. यदि हम भ्रूण अनुसंधान को आगे बढ़ाना चाहते हैं तो यह सीमा भी बढ़ानी पड़ेगी."

दक्षिण आस्ट्रेलिया के स्वास्थ्य आयोग ने हाल में ही प्रकाशित रपट में भ्रूण को जमा कर रखने की अवधि दस साल करने की सिफारिश करते हुए कहा है कि यह दंपति द्वारा दी गयी हिदायत पर निर्भर करेगा. अधिकतम अवधि फिर भी 10 वर्ष से अधिक नहीं होगी. इस तरह परखनली शिशु कार्यक्रमों में एक से अधिक बच्चे पैदा होने की शिकायतें दूर की जा सकेंगी. अतिरिक्त भ्रूण बैंक में जमा कर दिये जायेंगे. जब चाहें रोपित करवा कर बच्चे पैदा कर लें. उधर भ्रूण अनुसंधान का एक और पहलू करवट ले रहा है, कि ऐसे भ्रूण तैयार किये जायें जिनके अतिरिक्त अंग प्रत्यारोपण के काम आ सकें. कोई आश्चर्य नहीं कि कल यह संभव हो जाए कि परखनली में पनपायी गयी टांग किसी अपंग को लगा दी गयी. ■

जन्म से पहले जन्मजात रोगों से मुक्ति

इसी साल लंदन में इस तरह के प्रयोग बंदरों में शुरू किये जा रहे हैं जिनमें जन्मजात रोग पैदा करने वाले जीव निष्क्रिय करके या निकालकर स्वस्थ संतानें पैदा की जायेंगी. सेंट मेरी हास्पिटल, लंदन के डा. चार्ल्स रोडेक और प्रो. लेसली वेंट को आशा है कि पिछले दो-तीन वर्षों में विकसित नयी तकनीकों से गर्भस्थ भ्रूण को रोग मुक्त किया जा सकेगा. भ्रूण को बिना हानि पहुंचाये, उसका ऊतक निकालकर वंशागति की संकेत लिपि डी. एन. ए को पढ़ा जा सकता है और कोई दोष हो तो दूर किया जा सकेगा. इस भविष्यवाचक वाक्य को वर्तमान काल में आने में अभी दो-तीन साल लग सकते हैं. ■

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गावस्कर क्यों?

सुनील गावस्कर

सुनील मनोहर गावस्कर को एक बार फिर से भारतीय क्रिकेट टीम का कप्तान चुना गया है. आस्ट्रेलिया के विरुद्ध खेले जाने वाले आगामी एक दिवसीय अंतर-राष्ट्रीय मैचों तथा 12 अक्तूबर से शुरू होने वाली भारत-पाकिस्तान मिनी टेस्ट श्रृंखला के लिए गावस्कर को पांच सदस्यीय चयन समिति ने एकमत होकर कप्तान चुना है. चयन समिति में अध्यक्ष गुलाम अहमद के अलावा चंदू बोर्डे, पंकज राय, हनुमंत सिंह और बिशनसिंह बेदी सदस्य हैं.

पिछले वर्ष के अंत में सुनील गावस्कर ने जब वेस्ट इंडीज के विरुद्ध खेलते हुए ब्रैडमैन के रिकार्ड को तोड़ा, तो गावस्कर के एक पुराने प्रशंसक ने टिप्पणी की, "अब आप देख लीजिएगा—सितंबर में कप्तानी आपको वापस मिल जायेगी."

लेकिन तब गावस्कर को लग रहा था कि उन्हें अगर दुबारा कप्तान बनाया जायेगा तो शायद नवंबर से पहले नहीं. यानी पाकिस्तान में जाकर खेली जानेवाली मिनी टेस्ट श्रृंखला के लिए तब वह अपने आपको कप्तानी का उम्मीदवार नहीं समझ रहे थे. लेकिन दो बातों ने गावस्कर का साथ दिया. एक तो एशिया कप में उनकी कप्तानी ने अपने अच्छे रंग दिखाये. दूसरे, पाकिस्तान को सिर्फ क्रिकेट का ही दौरा नहीं करना चाहिए. जैसाकि एक खेल विशेषज्ञ ने 'दिनमान' को बताया, "पाकिस्तान के दौरे में डिप्लोमैसी की भी जरूरत पड़ती है. इस क्षेत्र में कपिल पिट जाते. गावस्कर को शायद इस वजह से भी कप्तान बनाया गया है कि पाकिस्तान में वह मैदान से बाहर की समस्याओं का भी सही ढंग से मुकाबला कर सकेंगे."

दिल्ली में फिरोजशाह कोटला में बंबई और शेष भारत के मुकाबले में गावस्कर कोई खास बल्लेबाजी नहीं कर पाये थे और शेष भारत जब पहली पारी में बल्लेबाजी कर रही थी, तो बंबई के कप्तान गावस्कर मैदान पर ही नहीं आ सके थे. इस मैच में कपिलदेव ने बल्लेबाजी, गेंदबाजी और कप्तानी सभी क्षेत्रों में संतुलित प्रदर्शन किया था. इसलिए कपिलदेव समर्थक लाबी ने फौरन जोर-शोर से कहना शुरू कर दिया कि कप्तानी के लिए कपिल के अलावा किसी और के बारे में सोचने की जरूरत ही नहीं है. एक जाने माने खेल संवाददाता ने ईरानी ट्राफी के पहले तीन दिनों की समीक्षा करते हुए लिखा कि सिर्फ कपिलदेव ने ही खेल के सभी विभागों में कमाल दिखाया है. इस समीक्षक का तर्क था कि कपिलदेव अपने घुटने के आपरेशन के बाद बिल्कुल फिट हैं और आस्ट्रेलिया और इंग्लैंड के विरुद्ध वेस्ट इंडीज ने जो प्रदर्शन किया उसको देखते हुए कपिलदेव का प्रदर्शन अब बेहतर नजर आने लगा है. "गावस्कर ने एशिया कप में बहुत उम्दा कप्तानी की लेकिन यदि कपिल उस वक्त उपलब्ध होते, तो शायद नतीजे पर कोई फर्क नहीं पड़ता."

जाहिर है कि कपिल समर्थक लाबी कप्तानी के लिए ईरानी कप के मुकाबले को जरूरत से ज्यादा महत्त्व दे रही थी. यह भी गलत है कि एशिया कप की विजय ने गावस्कर की वापसी की है. दरअसल पिछले वर्ष वेस्ट इंडीज के विरुद्ध श्रृंखला में गावस्कर ने यह सिद्ध कर दिया था कि एक बल्लेबाज के रूप में अभी वह चुक नहीं गये हैं. मार्शल की खूंखार गेंदबाजी का उन्होंने जिस हिम्मत से सामना किया उससे उनके समर्थन में वातावरण बन गया. दूसरी और अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कपिलदेव एक खिलाड़ी बहुत अच्छे हैं, लेकिन जहां तक कप्तानी का सवाल है उसके लिए एक बहुत अच्छा खिलाड़ी होना ही काफी नहीं है. खेल के मैदान से बाहर आज के कप्तान को बहुत फैसले लेने पड़ते हैं. पाठकों को ध्यान होगा कि पिछले वर्ष वेस्ट इंडीज के विरुद्ध टेस्ट श्रृंखला में मैच के बाद लायड और कपिल जब टी.वी. पर इंटरव्यू के लिए बुलाये जाते थे, तो कपिल अपने उत्साह में अक्सर ऐसी बातें कह जाते थे जो एक कप्तान को सार्वजनिक रूप से नहीं कहनी चाहिए. इसके विपरीत लायड हमेशा एक काइयां कप्तान की तरह सवालों के जवाब दिया करते थे.

गावस्कर के कप्तान चुने जाने के कुछ ही दिन पहले भूतपूर्व भारतीय कप्तान **मंसूर अली खां पटौदी** ने एक इंटरव्यू में कहा था कि कपिल की कप्तानी के लिए आलोचना करना उचित नहीं है. कपिल ने हमारे लिए विश्व कप जीता और वह विश्व की सर्वश्रेष्ठ टीम से हारे. उन्होंने गावर (इंग्लैंड) या आस्ट्रेलिया की टीम के मुकाबले में बेहतर प्रदर्शन किया. "लेकिन मैं नहीं समझता कि कपिल को कप्तान होना चाहिए. बल्कि यह गलत था कि पाकिस्तान से हारने के बाद गावस्कर से कप्तानी छीन ली गयी. उस वक्त कपिल को कप्तान बनाया जाना भी गलत था. वह एक बहुत अच्छा खिलाड़ी है और एक उम्दा आदमी है. लेकिन वह कप्तानी की चीज है ही नहीं. मेरे विचार में विश्वनाथ की ही तरह उसे सिर्फ खेल खेलने दिया जाना चाहिए. बंबई टेस्ट में वेस्ट इंडीज के विरुद्ध थोड़ा अधिक कल्पना से काम लिया गया होता तो हम शायद जीत जाते. लेकिन उसके लिए कपिल की आलोचना अनुचित है क्योंकि वह सर्वश्रेष्ठ टीम के खिलाफ थे. गावस्कर से कप्तानी छीनी ही नहीं जानी चाहिए थी. अगर कप्तान बदलना ही था तो यह काम किरमानी को सौंप दिया जाना चाहिए था."

पटौदी के इस विश्लेषण पर टिप्पणी की जरूरत नहीं है. यह दुखद है कि भारतीय क्रिकेट में इस समय बंबई बनाम उत्तर के खिलाड़ियों की बहस चल रही है. गावस्कर बंबई के खिलाड़ियों के लिए 'साफ्ट' जरूर रहे हैं लेकिन कौन ऐसा कप्तान होगा जिसकी अपनी खास तरह की रुचियां न हों? लेकिन चयन समिति को इन चीजों पर नजर रखनी चाहिए. आज हमें जरूरत एक अच्छी टीम की है—उत्तर या बंबई के खिलाड़ियों की दौड़ तो हम देख नहीं रहे हैं! ■

ईरानी ट्रॉफी के साथ कपिल देव

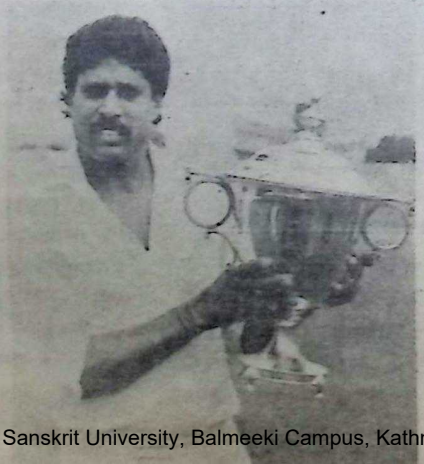

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुस्तक चर्चा

सूची में सच कितना है?

रवि चतुर्वेदी

प्राय: क्रिकेट प्रेमी विश्व के दस महान बल्लेबाजों या दस तूफानी सर्वश्रेष्ठ गेंदबाजों के चुनाव में तमाम तरह की अटकलबाजियां लगाया करते हैं. ऐसे खेल प्रेमियों के लिए इस समय बाजार में **द बुक आफ क्रिकेट लिस्ट्स** उपलब्ध है जिसमें स्वयं महान खिलाड़ियों ने अपने और बीते जमाने के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों की सूची प्रस्तुत की है.

'क्रिकेट लिस्ट्स' पुराने दिनों की याद ताजा करती है क्योंकि 'महानों' की सूची बनाते समय पुराने और आधुनिक युग के सभी खिलाड़ी और उनकी खेल शैली तथा खेल विषमताओं से सूची बनाने वाले का परिचित होना आवश्यक है.

एक भारतीय होने के नाते सबसे पहले मैंने इन महान खिलाड़ियों की सूची में भारतीय खिलाड़ियों के नाम झटपट ढूंढ़ डाले. पहली सूची में एक ओर इंग्लैंड की सर्वश्रेष्ठ टीम में लेन हटन, जेफ बायकाट, पीटर मे, डेनिस कांपटन, डेविड गावर, इयान बाथम, गाडफ्रे एवंस, जिम लेकर, फ्रेड ट्रूमैन, अंडरवुड और बाव विलिस हैं उधर दूसरी ओर शेष विश्व में सुनील गावस्कर, बाबी सिंपसन, दिलीप वेंगसरकर, किम ह्यूज, इमरान खां, फारूख इंजीनियर, रे लिंडवाल, राडनी मार्श, डेनिस लिली, माइकल होल्डिंग और लांस गिब्स हैं. इस सूची में तीन भारतीय खिलाड़ियों—गावस्कर, वेंगसरकर और इंजीनियर के नाम पाकर कोई भी भारतीय जहां प्रसन्न हो उठेगा वहीं दूसरी ओर विवियन रिचर्ड्स, क्लाइव लायड और गार्डन ग्रीनिज के नाम न देख कर आश्चर्यचकित होना भी स्वाभाविक है.

अगले पृष्ठ पर सर लेन हटन के दस महान सलामी बल्लेबाजों की सूची में जैक हाब्स, बैरी रिचर्ड्स, आर्थर मारिस, सीरियल वास-ब्रुक, ग्लेन टर्नर, जेफ बायकाट, गार्डन ग्रीनिज और एंड्रू संघम के नामों के साथ गावस्कर को इस सूची में पाना अस्वाभाविक नहीं लगता.

गाडफ्रे एवंस के दस महान विकेटकीपरों की सूची में डान टैलन, राडनी मार्श, एलेन नाट, बाव टेलर, फारूख इंजीनियर, जान मरे, जान वेट, वैली ग्राउट, वसीम बारी, सैय्यद किरमानी और डेरेक मरे हैं. यह सूची बनाते हुए एवंस लिखते हैं, डान ब्रैडमैन, गिल लैंजली और क्लायड वालकट के विकेट के पीछे के कारनामे बराबर उनके दिमाग को झकझोरते रहे, परंतु इन तीनों का नाम इस सूची में इसलिए नहीं आ पाया क्योंकि विकेट के पीछे इन तीनों ने सीमित समय ही गुजारा है.

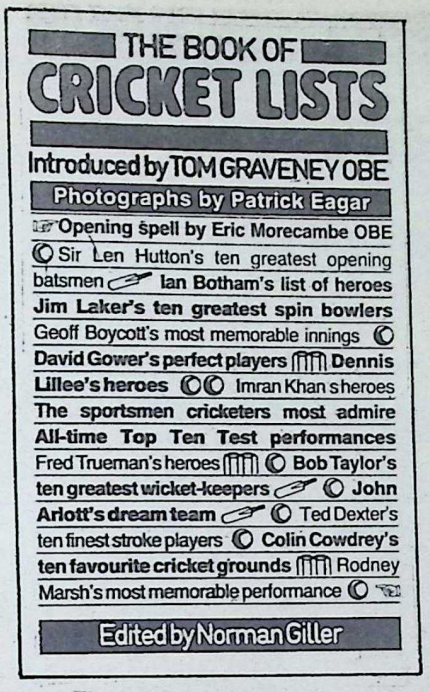

अपने समय के जाने माने मध्यम तेज गेंदबाज एलेक बैडसर (जिन्होंने 'लेग कट' गेंद करने का चमत्कार पैदा किया था) ने अपनी 'लिस्ट' में सिडनी बार्न्स, मौरिस टेट, ट्रैंबले, गारफील्ड सोबर्स, बिल जांसटन अमर्रसिंह, चार्ली टर्नर, फजल महमूद, जार्ज लोहमन और इयान बाथम के नाम गिनाये हैं. अमर्रसिंह का नाम इस लिस्ट में होने से स्पष्ट है कि बैडसर मध्यम तेज गेंदबाजी की बारीकियों से खूब परिचित हैं. इंग्लैंड के महान बल्लेबाज वाल्टर हैमंड ने अमर्रसिंह के बारे में कहा था, "अमर्रसिंह के बोलिंग रन को देख कर भला कोई अंदाजा लगा सकता था कि उनकी गेंद में इतनी गतिशीलता हो सकती है. गेंद टिप्पा खाने के बाद तीव्रता से कटाव के साथ तीर सी बल्लेबाज पर आती थी."

परंतु सर्वश्रेष्ठ मध्यम तेज गेंदबाजों में कपिल देव, एलेन डेविडसन, रिचर्ड हैडली और ग्राहम मैकंजी के नाम न होना अटपटा लगा.

जिम लेकर (जिन्होंने सन् 1956 में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध एक टेस्ट में 19 विकेट लेकर और शृंखला में 46 विकेट लेकर एक विश्व कीर्तिमान स्थापित किया था) अपनी दस महान फिरकी गेंदबाजों की सूची में विशन बेदी, बिल ओरेली, हग टेफील्ड, विलफ्रेड रोड्स, अंडरवुड और हैडले कैरिटी के नाम गिनाते हैं. इसी सूची में सनी रामधीन, ऐल्फ वेलनटाइन, मांकड़, सुभाष गुप्ते और भगवत चंद्रशेखर के नाम नहीं हैं. गुप्ते और चंद्रशेखर क्रमश: 149 (औसत 29.55) और 242 विकेट (औसत 29.74) लेने के बाद भी लेकर द्वारा सम्मान न प्राप्त कर सके, जबकि डूलैंड ने तीन टेस्टों में आस्ट्रेलिया की ओर से खेलते हुए केवल 9 विकेट (औसत 46.55) ले कर महानों की सूची में स्थान प्राप्त कर लिया. यह भारतीयों के प्रति उदासीनता का जीता जागता उदाहरण है. कहां राजा भोज (गुप्ते और चंद्रा) और कहां गंगू तेली (डूलैंड).

टैड डैक्सटर के दस महान स्ट्रोक प्लेयर्स की सूची को सुशोभित कर रहे हैं—गैरी सोबर्स, ग्रेमी पोलौक, विव रिचर्ड्स, बैरी रिचर्ड्स, पीटर बर्ज, कालिन मिल्बर्न, मंसूर अली खां पटौदी, जार्ज ऐमट, जिम पार्क्स और पीटर मे. यह सूची बहुत ही विवादास्पद है. स्ट्रोक खेलने वालों में एवर्टन वीक्स, क्लायड वालकट, बासिल बुचर, रोहन कन्हाई, क्लाइव लायड, पाली उमरीगर, कीथ मिलर, जान रीड, नार्मल ओनील, फारूख इंजीनियर, इयान बाथम, कपिल देव और रिचर्ड हैडली को नहीं भुलाया जा सकता है.

लांस गिब्स ने 309 विकेट लेकर एक विश्व कीर्तिमान स्थापित किया था. (परंतु डेनिस लिली ने 355 विकेट लेकर उसे धराशाही कर दिया). उन्होंने अपनी दस महान फिरकी गेंदबाजों की सूची बनाते समय काफी सूझबूझ का परिचय दिया है और चयन के समय उनका दृष्टिकोण विश्वव्यापी रहा है क्योंकि वे रिची बैनो, सुभाष गुप्ते, सनी रामधीन, एल्फ वेलनटाइन, जिम लेकर, बिशन बेदी, हग टेफील्ड, भगवत चंद्रशेखर, अंडरवुड और प्रसन्ना को महान फिरकी गेंदबाजों में गिनते हैं. इस सूची में पाकिस्तान के इंतखाब आलम के नाम को लेकर जरूर बहस हो सकती है.

उधर जान लीवर ने महान बायें हत्थे के तेज गेंदबाजों की सूची में गैरी सोबर्स, एलेन डेविडसन, ट्रेवर गोडार्ड, बिल जांसटन, जैफ जोंस, फ्रेड रम्से, गैरी गिलमौर, रिचर्ड कौलिज, बर्नाड जूलियन और टानी लाक (जब वह तेज गेंद फेंकते थे) के नाम गिनाये हैं.

अंडरवुड ने बायें हत्थे के फिरकी गेंदबाजों में बिशन बेदी और वीनू मांकड़ के नाम का उल्लेख किया है. परंतु सर्वश्रेष्ठ नजदीकी क्षेत्र रक्षकों में एकनाथ सोलकर के नाम का न होना सूची बनाने वालों की सीमा का प्रमाण है.

पुस्तक के दूसरे अध्यायों में 'हीरोज के हीरोज' कौन हैं के बारे में जानकारी लीजिए विश्वविख्यात टेस्ट खिलाड़ियों से कि वे किसे महान बल्लेबाज, गेंदबाज या क्षेत्र रक्षक आंकते हैं. सबसे रोचक प्रतिक्रियाएं सर्वश्रेष्ठ क्रिकेट खिलाड़ियों के चयन में जाने माने अभिनेताओं, संगीतज्ञों व समाज के अन्य महारथियों की हैं. सातवें अध्याय में 'जन्म-लग्न' के अनुसार महान खिलाड़ियों का वर्गीकरण किया गया है. आठवें व अंतिम अध्याय में महानों के आंकड़ों का विवरण दिया गया है. ■

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फिल्म उद्योग को डर किस का है?

नसीर का या अपने नसीब का

नसीरुद्दीन शाह ने अभी कुछ ही महीने पहले एक इंटरव्यू में कहा था कि सारे पुरस्कारों पर प्रतिबंध लगा दिया जाना चाहिए. वे दरअसल, एक रैकेट बन गये हैं. वेनिस में **गौतम घोष** की फिल्म **'पार'** में अभिनय के लिए नसीरुद्दीन शाह को सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार मिला है. यह हमें पता नहीं कि नसीरुद्दीन शाह वेनिस पुरस्कार को रैकेट मानते हैं या नहीं. लेकिन यह बात जरूर महत्वपूर्ण है कि यह वर्ष हमारे अभिनेताओं के लिए बड़ा शुभ सिद्ध हो रहा है. पहले **स्मिता पाटील** की फिल्मों का एक महत्त्वपूर्ण पुनराव-लोकन प्रदर्शन फ्रांस में हुआ. फिर जुलाई में **ओम पुरी** को कालोवी वारी अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार मिला. और अब नसीरुद्दीन शाह को वेनिस में यह सम्मान मिला है. वेनिस समारोह एक समय में बहुत महत्वपूर्ण फिल्म महोत्सव माना जाता था. आज उसकी ख्याति पहले जैसी नहीं है फिर भी वहां पर नसीर को यह पुरस्कार मिलना एक महत्वपूर्ण घटना है. हमारे फिल्म निर्देशक महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों में समय समय पर नाम कमाते रहे हैं. लेकिन एक साथ तीन अभिनेताओं को एक के बाद एक अंतरराष्ट्रीय सम्मान मिलना एक बड़ी बात है. हम यहां यह भी याद कर लें कि ये तीनों अभिनेता लगभग एक ही समय में और एक ही तरह की फिल्मों की मदद से 'स्टार' बने हैं.

नसीरुद्दीन शाह नौ वर्षों से फिल्मों में सक्रिय हैं और अनेक पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं. इसी वर्ष उन्हें 'मासूम' में अभिनय के लिए 'फिल्मफेयर' पुरस्कार भी मिला था. पुरस्कारों के बारे में नसीर की बेबाक राय है: "मैं उन्हें अस्वीकार नहीं करता क्योंकि संबद्ध लोगों की भावनाओं को इससे चोट पहुंचेगी. एक अभिनेता के काम का मूल्यांकन बहुत मुश्किल है और वह एक फोटोग्राफर और फिल्म संपादक के काम के मूल्यांकन से भिन्न भी है. किसी भी फिल्म में एक अभिनेता ने अगर अपना सब कुछ लगा दिया है तो वह वर्ष का सर्वश्रेष्ठ अभिनेता है. और इस तरह के अभिनेता अनेक हैं. जीतने वालों और हारने वालों का यह खेल व्यर्थ है और साथियों में इससे गलतफहमियां पैदा होती हैं. एक जमाने में 'फिल्मफेयर' पुरस्कार मेरे लिए राष्ट्रीय पुरस्कार से भी अधिक महत्व रखता था चूंकि मैं हमेशा उसे जीतने के सपने देखता था. लेकिन अब मैं चार 'फिल्मफेयर' पुरस्कार जीत चुका हूं इसलिए उनसे मैं बोर हो चुका हूं, थक चुका हूं. फिल्म उद्योग ने इस वर्ष के पुरस्कारों का बहिष्कार किया चूंकि अधिकांश पुरस्कार तथाकथित 'नयी लहर' के सिनेमा को मिले. लेकिन उद्योग किस चीज से डरता है? वे चाहें तो सभी पुरस्कार हथिया सकते हैं. सच तो यह है कि पुरस्कारों को 'बैन' कर देना चाहिए. वे सभी एक रैकेट बन चुके हैं."

एक अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार तो खैर नसीर को पहली बार मिला है. इसलिए उससे बोर हो जाने या थक जाने का सवाल नहीं उठता.

नसीरुद्दीन शाह ने अपना अभिनय का जीवन रंगमंच से शुरू किया था. लेकिन उनका कहना है कि भले ही मैं रंगमंच से फिल्मों में आया लेकिन "मैं रंगमंच को चाहता तो हूं, पर उससे प्रतिबद्धता नहीं महसूस करता." गिरीश कार्नाड ने 'जू स्टोरी' नामक नाटक में नसीर के काम को देखा और श्याम बेनेगल से उनकी सिफारिश की. बेनेगल ने फौरन नसीर को अपनी फिल्म 'निशांत' में मौका दिया. 'निशांत' के बाद नसीर को फिल्मों में तुरंत सफलता नहीं मिली. फिल्मों का उन्होंने इंतजार किया और आराम से रंगमंच में काम करते रहे. लेकिन धीरे-धीरे श्याम बेनेगल, सई परांजपे और शेखर कपूर आदि फिल्म निर्देशकों की फिल्मों में नसीर को अपनी प्रतिभा की ऊंचाइयां दिखाने का मौका मिला. यह कहना गलत नहीं होगा कि इस समय फिल्मोद्योग में नसीर की टक्कर के अभिनेता खोजना बहुत मुश्किल काम है. वैसे तो ओम पुरी से नसीर की तुलना करने की कोई जरूरत नहीं है चूंकि दोनों भिन्न मिजाज के अभिनेता हैं, लेकिन नसीर के अभिनय में कहीं ज्यादा विविधता और विस्तार है. फिल्मोद्योग के यथावह 'ग्लैमर' के बीच नसीर सरीखे अभिनेता बिल्कुल अलग दिखाई पड़ते हैं. दिलीप कुमार, देवानंद या अमिताभ से नसीर की तुलना करना बेकार है. यह अचानक नहीं है कि नसीर और ओम पुरी सरीखे अभिनेता बंबइया फिल्मोद्योग में अपने आप को

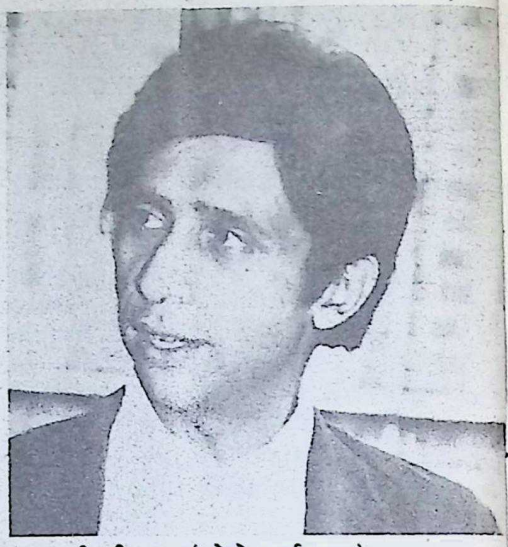

नसीरुद्दीन शाह (फोटो: दुर्गाप्रसाद)

बलराज साहनी की अभिनय परंपरा से जोड़कर देखना चाहते हैं. नसीर का यह कहना सही है कि दर्शक अमिताभ और राजेश खन्ना को गरीबों का प्रवक्ता कैसे समझ लें! "अमिताभ जब दर्शकों को 'हम गरीब' कहकर संबोधित करते हैं, तो वे हास्यास्पद नजर आते हैं. लोग उन्हें देवता की तरह देखना चाहते हैं."

उल्लेखनीय है कि इन सभी अभिनेताओं को 'अर्द्धसत्य', 'स्पर्श' और 'मासूम' सरीखी फिल्मों से चर्चा मिली है. ये लोग मानते हैं कि इन फिल्मों में मनोरंजन और मानवीय यथार्थ का कलात्मक पुनर्निर्माण हुआ है. कुछ गंभीर फिल्मकार इन फिल्मों की बाक्स आफिस पर सफलता से दुखी हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि अब इन्हीं फिल्मों को अच्छी फिल्में मान लिया जायेगा. लेकिन यहां यह बात महत्त्वपूर्ण है कि भारत में पिछले एक दशक में व्यावसायिक सिनेमा जिस घटिया स्तर पर आ गया है, वहां पर साफ सुथरी फिल्मों की जरूरत बहुत ज्यादा महसूस होने लगी है. जरूरी नहीं है कि ये सभी फिल्में कला फिल्में हों.

इस बात से आज शायद ही किसी को मत-भेद हो कि अच्छे फिल्मकारों के लिए इन दिनों अभिनेता-अभिनेत्रियों की कोई कमी नहीं है. अगर उनके पास एक दृष्टि हो और अच्छी पटकथा हो, तो इन अभिनेताओं की मदद से अनेक अच्छी फिल्में बनायी जा सकती हैं. ये अभिनेता दरअसल अभी भी अच्छे लेखकों और फिल्मकारों की प्रतीक्षा कर रहे हैं. यह अलग बात है कि फिल्म के व्यावसायिक तंत्र में अच्छे लेखक और फिल्मकार आसानी से अपने को 'फिट' नहीं कर पाते. एक अभिनेता अपेक्षाकृत आसानी से सुबह एक पूरी तरह से व्यावसायिक फिल्म में काम करने के बाद शाम को एक गंभीर फिल्म में अपने चेहरे की असली ताकत को पहचानने के लिए कैमरे की तेज रोशनी के सामने खड़ा हो सकता है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पहले दिन ही 'पैक अप'

संजीव कुमार फिल्मी दुनिया में अपनी लेट लतीफी के लिए मशहूर है, और इसका उसे काफी नुकसान भी उठाना पड़ा है. सुना है कि उसके हाथ से प्रकाश मेहरा की फिल्म 'इंसान की औलाद' का अनुबंध निकल गया है. कारण यह था कि शूटिंग के पहले रोज ही वह सेट पर 6 घंटे लेट पहुंचा. प्रकाश मेहरा को इसकी आदत नहीं है क्योंकि उन्होंने समय की पाबंदी का ध्यान रखने वाले अमिताभ बच्चन के साथ फिल्में बनायी हैं. प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि संजीव कुमार को देखते ही प्रकाश मेहरा ने 'पैक अप' कह दिया और गाड़ी में बैठ कर रवाना हो गये. इसके बाद संजीव कुमार प्रकाश मेहरा के पीछे पीछे उनके दफ्तर तक पहुंचे. बंद कमरे में प्रकाश मेहरा और संजीव कुमार की दो घंटे तक बातचीत चलती रही. इस बातचीत के दौरान प्रकाश मेहरा ने दफ्तर में मौजूद सभी लोगों को बाहर भेज दिया. यह तो पता नहीं चला कि अकेले में उनकी संजीव से क्या बातचीत हुई लेकिन यह तय लगता है कि 'इंसान की औलाद' में अब वह संजीव कुमार की बजाय किसी और अभिनेता को लेंगे.

कादर खान के संवाद

जबसे कादर खान को दक्षिण की फिल्मों से द्विअर्थी संवादों के लिए लोकप्रियता मिली है तब से फिल्म उद्योग में उनकी मांग बेहद बढ़ गयी है. उनका अपने पुराने निर्माताओं से संवाद टूटने लगा है. इनमें मनमोहन देसाई जैसे निर्माता-निर्देशक भी हैं जिनके बारे में स्वयं कादर खान कहा करते थे कि चाहे वह कितने भी व्यस्त हो जायें उनके लिए लिखना नहीं छोड़ेंगे. फिल्म उद्योग में यह समाचार बड़े आश्चर्य के साथ सुना गया कि मनमोहन देसाई की फिल्म 'अल्ला रक्खा' कादर खान नहीं लिख रहे. उनके बेटे केतन को यह फिल्म जावेद सिद्दीकी से लिखवानी पड़ी है. मनमोहन देसाई के कैंप के लोगों का कहना है कि देसाई ने स्वयं कादर खान से यह फिल्म लिखवाना उचित नहीं समझा. इसका कारण यह है कि कादर खान के साथ कुछ ऐसी 'बदनाम' फिल्मों का नाम जुड़ गया है कि अगर फिल्म में लेखक की जगह उनका नाम होगा तो दर्शक फिल्म से द्विअर्थी और अश्लील संवादों की अपेक्षा करेंगे. कादर खान के निकटवर्त्ती सूत्रों के अनुसार कादर खान ने स्वयं 'अल्लाह रक्खा' स्वीकार नहीं की क्योंकि मनमोहन देसाई 'अल्ला रक्खा' में अल्लाह के नाम पर कुछ ऐसी चीजें दिखाना चाहते थे जो उन्हें स्वीकार नहीं थीं.

राजेश खन्ना : 'कोई नियम-वियम नहीं'

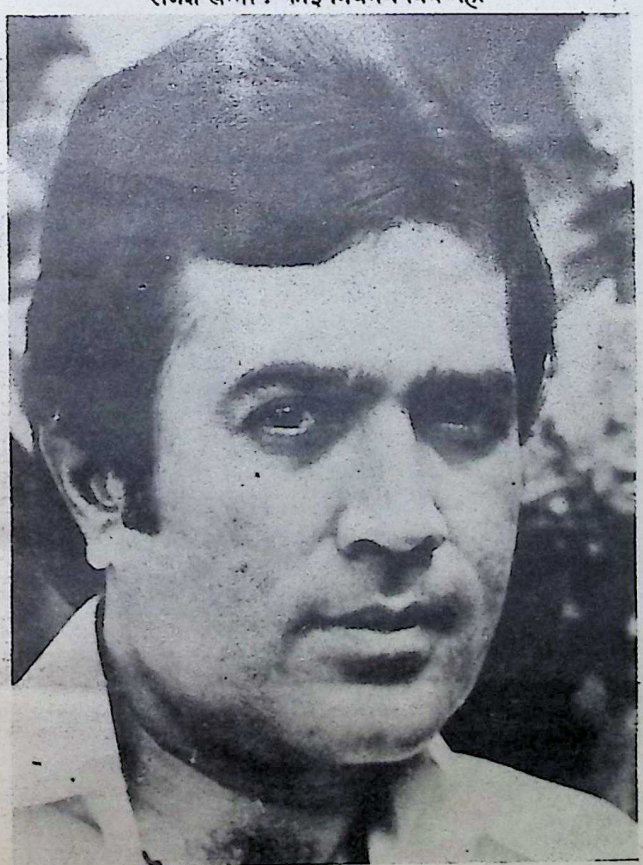

जल्दी क्या है

यश चोपड़ा को भी अब समय की कीमत का पता चल गया है. अभी तक वह अपनी फिल्मों में सितारों की कीमत का ही महत्त्व समझते थे. उन्होंने अपनी नयी फिल्म 'फासला' तीन महीने में पूरी करने का फैसला किया है. फिल्म की मुख्य भूमिका में सुनील दत्त, राज बब्बर और रेखा के साथ उन्होंने एक नयी रोमांटिक जोड़ी पेश करने की घोषणा की है. फिल्मी दुनिया के लोग इस पर यह टिप्पणी कर रहे हैं कि 9-9 महीनों में फिल्म बनाने वाला अगर तीन महीने में फिल्म बनायेगा तो 'प्री मैच्योर डिलीवरी' का भी तो खतरा है!

राजेश : मैं एक्टर हूं क्लर्क नहीं

राजेश खन्ना को आशा है कि अक्तूबर में उसे अपनी पत्नी डिंपल से तलाक मिल जायेगा. हाल ही में उसने एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि ऐसा विश्वास उसके वकीलों ने उसे दिलाया है. पिछले काफी अर्से से डिंपल के साथ उसके तलाक का मामला अटका पड़ा है. एक अन्य प्रश्न के उत्तर में राजेश खन्ना ने कहा मैं फिल्म उद्योग के अन्य सितारों से भिन्न किस्म का आदमी हूं. इसका कारण वह यह बताता है कि मैं एक एक्टर हूं–क्लर्क नहीं. एक्टिंग मैं शौक के लिए करता हूं पैसे के लिए नहीं. और यही वजह है कि मैं समय की पाबंदी और उद्योग के अन्य नियमों का पालन एक क्लर्क की तरह नहीं कर सकता.

कम खाओ कमाओ

देव आनंद का कहना है कि वीडियो के कारण निर्माताओं को करोड़ों की बातें लाखों में और लाखों की बातें हजारों में करनी पड़ेंगी. उनके अनुसार इस ममस्या का यही एक समाधान बचा रह गया है कि निर्माता कम लागत में और कम समय में अच्छी फिल्में बनायें. और थोड़ा कमायें.

एक बंगला बने न्यारा

जब से सारिका ने जुहू में बंगला खरीदा है उसके बारे में तरह तरह की अफवाहें उड़ रही हैं. लोग हैरान हैं कि सारिका के पास एकाएक इतना धन कहां से आ गया क्योंकि पिछले काफी अर्से से वह बंबई में पेइंग गेस्ट के तौर पर रह रही थी. यह उसने स्वयं ही स्वीकार किया था कि मां का घर छोड़ते वक्त उसके पास दो रुपए भी नहीं थे. सुना यह भी जाता है कि पेइंग गेस्ट के रूप में उसे पिछले दो सालों में कोई छह स्थान बदलने पड़े क्योंकि जिन लोगों के साथ वह रहती थी उन्हें पेइंग गेस्ट के रूप में किराया वक्त पर नहीं अदा कर पाती थी. फिल्मों में भी उसे विशेष भूमिकाएं नहीं मिलीं. फिल्म उद्योग में सारिका के बंगला खरीदने को लेकर एक ही बात लोगों के समझ में आती है कि यह बंगला उसने कमल हासन के पैसों से खरीदा है जो वाणी गणपति से तलाक ले कर सारिका से विवाह करना चाहता है. पिछले दिनों कमल हासन को लेकर उसकी पत्नी वाणी गणपति और सारिका में मारपीट से फिल्मी दुनिया में स्कैंडल-सा बन गया था. ■

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिहार राज्य कला अकादमी

तीन वर्षों में सिर्फ तीन दिनों का काम

अवधेश अमन

राज्य सरकारें अगर कलाओं के प्रोत्साहन और विकास के लिए कुछ करना चाहती हैं तो उसका स्वागत होना चाहिए. लेकिन ऐसी अकादमियों को बनाने से क्या लाभ, जिनका पूरा गठन कलाकारों की हिस्सेदारी के बिना हुआ हो और जो तीन साल के दौरान भी कुछ न कर पायी हों?

ठीक तीन वर्ष पहले बिहार में रूपंकर तथा निष्पादन कलाओं और उनसे जुड़े कलाकारों के प्रोत्साहन के लिए सितंबर 1981 में राज्य सरकार ने बिहार राज्य कला अकादमी की स्थापना की घोषणा की थी. दिसंबर '81 में पटना में श्रीकृष्ण पुरी स्थित किराये के एक भवन में अकादमी का कार्यालय काम भी करने लगा. सात-सात हजार रुपयों की कुर्सियां खरीद कर सचिव, अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के भव्य तरीके से बैठने का बंदोबस्त कर डाला गया. दफ्तरी सुविधाओं की सभी जरूरतें आनन-फानन पूरी कर डाली गयीं. तीन तृतीय श्रेणी और 11 चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की नियुक्ति कर दी गयी.

लेकिन इस समूची व्यवस्था के पीछे जगन्नाथ सरकार की राजनैतिक छाया मौजूद थी. दरबार के लिए तथाकथित 'कलाकार चारणों' की वैसी ही जरूरत थी, जैसी राजनीतिक हलके में निगमों और बोर्डों के अध्यक्षों के रूप में 'राजनैतिक चारणों' की. कहा जाता है कि जगन्नाथ मिश्र के एक पुराने मित्र श्री बंधु महतो ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हें पंजीरी-प्रसाद के राजकीय वितरण में कोई निगम या बोर्ड हासिल नहीं हो पाया था. उन्हें इसी कला अकादमी के अध्यक्ष की सात हजारा कुर्सी पर जमा दिया गया. यह भी कहा जाता है सलिल दास गुप्त को उपाध्यक्ष और गजेंद्र नारायण सिंह को अकादमी का सचिव बनने के लिए तरह तरह के न्यौते, ज्यौनार और खुशामदें करनी पड़ीं.

अब तत्कालीन सरकार के कमलनाथ सिंह ठाकुर, कुमुद रंजन झा, और बंधु महतो जैसे लोगों के सुझावों पर जो अकादमी बनी, उसे कुछ न कुछ तो कला के नाम पर करना ही था. लेकिन लंबे समय तक अधिकारियों के दिमाग में यह स्पष्ट ही नहीं हो पाया कि राज्य में कला और कलाकारों के लिए क्या होना चाहिए. जब कभी कलाकारों ने अधिकारियों के समक्ष सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रस्ताव रखे, तो या तो उन्हें कोरे आश्वासन दिये गये या आर्थिक अभाव का रोना रोया गया. डेढ़ साल के बाद अधिकारियों की जमुहाई बीच में रुकी और उन्होंने राज्य के विभिन्न कला विधाओं के पांच वृद्ध कलाकारों को एक-एक हजार रुपये की मानद राशि और एक एक चादर पचीस आदमियों की मौजूदगी में भेंट करके यह जतलाया कि 'देखो हम जाग रहे हैं, सक्रिय हैं और कर्मठ हैं.' कुछ दिन और बीते और फिर कुल जमा पांच स्कूलों के कुल जमा तीस बच्चों को जोड़तोड़ कर एक बाल प्रदर्शनी लगा दी गयी. कुल मिलाकर जून माह तक के ढाई साल में यही काम कला अकादमी ने किया था.

अकादमी के अध्यक्ष दो हजार रुपये तथा उपाध्यक्ष और सचिव डेढ़-डेढ़ हजार रुपयों की मानदेय राशि हर माह प्राप्त कर रहे हैं. अकादमी के भवन पर 18 हजार रुपये सालाना किराये पर खर्च होते हैं. वेतन, भत्ता तथा व्यवस्था के मद को जोड़ा जाये तो सालाना दो लाख रुपया इस अकादमी की दफ्तरी व्यवस्था पर खर्च बैठता है. इतने खर्च और सुविधाओं के बावजूद अकादमी ने अभी तक यह जानने की कोशिश नहीं की कि केंद्रीय ललित कला अकादमी, संगीत नाटक अकादमी और दूसरे राज्य सरकारों की कला अकादमियों का स्वरूप और उनका संविधान क्या है.

सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू तो यह है कि कलाकारों की सामान्य परिषद तथा कार्यकारिणी समिति का गठन, उपाध्यक्ष का चुनाव और अध्यक्ष का मनोनयन करने का लोकतांत्रिक अधिकार कलाकारों के पास नहीं है. अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव और कार्यकारिणी तथा सामान्य परिषद का गठन राज्य सरकार की ओर से बिना किसी लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अपनाये किया गया है.

दूसरा तथ्य यह है कि चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, नृत्य, नाटक और लोककला को इस अकादमी में एक साथ समन्वित कर दिया गया है. अच्छा यह होता कि अन्य राज्यों की तरह यहां चाक्षुष और रूपंकर कलाओं के लिए 'ललित कला अकादमी' अलग बनायी जाती तथा संगीत, नृत्य और नाटक आदि निष्पादन कलाओं के लिए 'संगीत नाटक अकादमी' की अलग व्यवस्था होती. तत्कालीन जगन्नाथ सरकार के विधान परिषद के सदस्य पद्मश्री पोद्दार रामावतार अरुण ने दोनों अकादमियों के निर्माण की पूरी योजना का सुझाव दिया भी था, मगर सरकार के कान में जूं कभी नहीं रेंगी.

अब सरकार ने रूपंकर और निष्पादन कलाओं को एकमएक करने की ठानी है तो कम से कम अकादमी में दोनों कला रूपों के लिए अलग अलग विशेषज्ञ सचिव रखे जाने चाहिए. इसके अलावा इनसे संबंधित कार्यकारिणी और सामान्य परिषद का गठन भी अलग अलग होना चाहिए. एक वयोवृद्ध गायक तथा सामान्य परिषद के सदस्य का जून महीने में कहना था कि "ढाई वर्षों में अकादमी के परिषद की कोई बैठक नहीं बुलायी गयी. जब इस अकादमी की स्थापना नहीं हुई थी तब भी राज्य में अनेक कला संस्थाएं अपनी रचनात्मक भूमिका निभा रही थीं और अब भी राज्य में कला और संस्कृति के क्षेत्र में उन्हीं के माध्यम से कुछ सक्रियता बनी हुई है. हालांकि इन संस्थाओं को सरकार की ओर से जो अनुग्रह-राशि हर वर्ष प्राप्त होती है, उसमें से 25 प्रतिशत रकम सचिवालय के कारिंदो को 'भेंट' में देनी पड़ती है. बिहार के चित्रकारों तथा मूर्तिशिल्पियों की 30 साल पुरानी संस्था 'शिल्प-कला परिषद' के सचिव श्री राधा मोहन ने जब ऐसा 'चढ़ावा' देने से इनकार किया तो परिषद को मिलने वाली तीन हजार रुपयों की छोटी सी राशि भी बंद कर दी गयी. जब कि कई ऐसी संस्थाएं हैं जिन्हें पचीस हजार से लेकर डेढ़ लाख रुपये तक की अनुग्रह राशि सचिवालय द्वारा प्राप्त हुई है."

'शिल्प कला परिषद' केंद्रीय ललित कला अकादमी से मान्यताप्राप्त संस्था है, जिसे अकादमी द्वारा महज पांच हजार रुपयों का वार्षिक अनुदान प्राप्त होता है. परिषद के माध्यम से राज्य स्तर की एक वार्षिक कला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रदर्शनी तथा राज्य के बाहर एक प्रदर्शनी आयोजित करके रूपंकर कलाओं के प्रोत्साहन के लिए निरंतर कार्य किया जा रहा है. लोक कलाओं के सर्वेक्षण और अध्ययन के लिए भी परिषद ने महत्त्वपूर्ण पहल की है. इसी तरह पटना के रंगकर्मियों की संस्था 'कला संगम' युवा चित्रकारों की संस्था 'समूह अब', 'भारतीय नृत्य कला मंदिर', 'कालिदास रंगालय' तथा कुछ दूसरी संस्थाओं ने भी स्वतंत्र रूप से कार्य किया है. लेकिन इनके कार्यों की ओर न सरकार का ध्यान है न उसके नौकरशाहों का. दूसरे पिछड़े हुए राज्यों में भी सरकार के द्वारा जितना प्रोत्साहन दिया जा रहा है, उसका आधा भी बिहार में विभिन्न कलाओं के प्रोत्साहन के लिए उपलब्ध नहीं है. पिछले वर्षों में लगभग 50 बार कलाकारों के प्रदर्शन और धरने के बावजूद राजकीय रंगशाला को सी. आर. पी. के जवानों से खाली नहीं करवाया जा सका था.

बहरहाल राज्य भर के कलाकार इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि बिहार राज्य कला अकादमी का एक स्वायत्त संस्था के रूप में लोकतांत्रिक ढांचे के अनुसार पुनर्गठन हो और इसकी गतिविधियों का केंद्र राजकीय रंगशाला को बनाया जाये.

कला अकादमी की गतिविधियों के बारे में जानने के लिए जब मैंने कुछ महीने पहले अकादमी के अध्यक्ष बंधु महतो से पूछा था कि 'अकादमी की अब तक की निष्क्रियता का कारण क्या है?' तो उनका सीधा उत्तर था कि 'अकादमी को सिर्फ दो लाख रुपये सालाना मिल पाते थे, जो वेतन आदि में ही खर्च हो जाते थे. सरकार ने इससे अधिक रुपयों का आवंटन ही नहीं किया. तो हम करते क्या?' सचिव गजेंद्र नारायण सिंह ने भी अध्यक्ष की ही बात दुहराई. साथ ही यह भी कि 'हमने शुरू में ही जरूरत से ज्यादा कर्मचारियों की नियुक्ति कर ली. इससे एक बड़ी राशि वेतन के मद में ही खर्च होती रही. सरकार ने इस वर्ष हमारे वार्षिक आवंटन में कटौती करके दो लाख के अनुदान को डेढ़ लाख कर दिया है तो हमारे सामने परेशानियां और मुश्किलें और बढ़ गयी हैं.' उन्हें इस बात का भी क्षोभ था कि करना तो वे बहुत कुछ चाहते थे, योजनाएं भी थीं लेकिन सरकार की उपेक्षा और योग्य लोगों की कमी के कारण कुछ हो नहीं पाया. उनकी नियुक्ति भी तीन साल के लिए हुई थी जिसकी अवधि इसी सितंबर में पूरी हो रही है.

अगर राज्य कला अकादमी को जीवित और सक्रिय रखना है, अगर उसके माध्यम से राज्य की रूपंकर और निष्पादन कलाओं की गतिविधियों को प्रोत्साहन देना है तो कलाकारों को जल्द से जल्द एक बड़े आंदोलन के लिए खुद को तैयार कर लेना चाहिए. ■

साहित्य

डा. रामदरश मिश्र की षष्ठिपूर्ति के अवसर पर विशेष

बेचैन साठ साल

डा. विनय

रामदरश जी के लिए लिखना उनके जीवन की अस्मिता का मूल आधार है. इस 15 अगस्त को वे अपने जीवन के 60 वसंत पूरे कर चुके हैं और 61 वें वसंत में प्रवेश करते हुए एक नये उपन्यास पर काम कर रहे हैं. इस मौके पर उनकी तीन रचनाएं एक साथ प्रकाशित हुई हैं. मिश्र जी की इकसठ कहानियां (कहानी संग्रह), दिन जो नदी बन गया (कविता संग्रह) तथा जहां मैं खड़ा हूं. (आत्मकथात्मक पुस्तक). उनकी रचनाओं में किसान परिवार के जीवन की महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक छवियां बड़ी सहजता से आती हैं.

अपने औपन्यासिक जीवन में 'पानी के प्राचीर' से लेकर 'बिना दरवाजों के मकान' तक टूटती और फिर बनती जिंदगी को एक अनवरत प्रवाह के रूप में देखने की कोशिश मिश्र जी की जीवन दृष्टि को स्पष्ट करती है. गांव के लोक जीवन से उठता हुआ मेघ भरा-चढ़ाव, नगर के आधुनिक बोध पर फैलता हुआ, तेज रफ्तार होकर चारों तरफ से अनुभव वृत्तों को समेटता रचना की संवेदना में सिमट आता है. गांव और शहर दोनों छोरों को मिश्र जी का रचनाकार मन जैसे अपनी हथेलियों पर उठाये हुए है.

यूं तो कोई न कोई जगह किसी व्यक्ति के नाम लिख दी जाती है या व्यक्ति खुद को किसी जगह के नाम लिख देता है, लेकिन गोरखपुर जिले का एक कछार अंचल, उसमें गांव डुमरी और उसमें बसा एक मध्यवर्गीय परिवार मिश्र जी के नाम लिखा गया. उस गांव से अलग 10 मील दूर स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपने नाम लिखी जगह बदली और फिर बनारस, काशी हिंदू विश्वविद्यालय में पी.एच.डी. की औपचारिकता भी पूरी की. फिर 1956 के बाद साल भर बड़ौदा के एम.एस. विश्वविद्यालय में काम करने के बाद गुजरात विश्वविद्यालय से जुड़ गये. जगह बदलने का क्रम जारी रहा. और अहमदाबाद तथा नवसारी से होकर 1964 में दिल्ली विश्वविद्यालय में आ गये. दिल्ली विश्वविद्यालय में रीडर बने और अब प्रोफेसर.

मिश्र जी से पूछा कि उन्हें कैसा अनुभव हो रहा है और क्या वे अपनी इस यात्रा में अपने साथियों और अपने आलोचकों से संतुष्ट

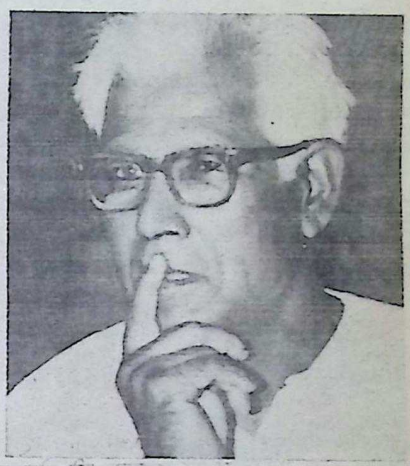

हैं? उन्होंने कहा : 'आलोचकों की बात तो क्या करें, अच्छा-बुरा तो लगता ही रहता है. खुशी वहां होती है जहां आलोचक लेखक की बात सही परिप्रेक्ष्य में वस्तुगत दृष्टिकोण से विश्लेषित करता है. फिर चाहे उसके निष्कर्ष अनुकूल हों या प्रतिकूल. कष्ट तब होता है, जब इसके विपरीत व्यक्तिगत रागद्वेष से बात होती है. पर मुझे अपने कई साथियों पर गर्व है. वस्तुतः यही अर्जित उपलब्धि है. आपके दो चार मित्र हों, उनपर आपका विश्वास हो.'

हां, विश्वास और इसके साथ साथ प्रेम, स्नेह तथा इन सबसे बड़ी सहजता रामदरश मिश्र के जीवन का आधार है. मैंने जब जब अपने और उनके बीच कुछ जोड़ने की कोशिश की तब तब भावना की तरंगों पर बहुत कुछ उतर आता रहा और यही रूप-रस-गंध से भरा हुआ हमारा वर्त्तमान, जो कहीं न कहीं उन सारे अभावों और आर्तनादों से भी भरा हुआ है जिन तक हमारी दृष्टि नहीं जाती, लेकिन जिसे हम जानते हैं और अच्छी तरह महसूस करते हैं--यही द्वंद्व मिश्र जी के लेखन को निखारता रहा है. एक ओर वसंत पकड़े रहने की रागमयी भूमिका और दूसरी ओर पानी भरे हुए कछार में धंसे हुए बाहर आने को बेचैन पैरों की कसमसाहट, मिश्र जी दोनों को संभालते हुए अपनी दृष्टि आदमी की ताकत पर जमाते रहे हैं और अपने पूरे रचनात्मक आवेग के साथ उस बेचैनी को महसूसते रहे हैं. ■

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चरित चर्चा

परितोष सेन

66 की उमर में भी नये नये हौसलों से भरे चित्रकार परितोष सेन कलकत्ता में लगी अपने 18 नये चित्रों की प्रदर्शनी से आजकल फिर चर्चा में हैं. ये चित्र उनके अमेरिका प्रवास के दौरान वहां के जनसंचार माध्यमों से हासिल अनुभवों पर आधारित हैं. अपराध और हिंसा को जिस तरह प्रमुखता देकर वहां प्रचारित किया जा रहा है, उसने उनको

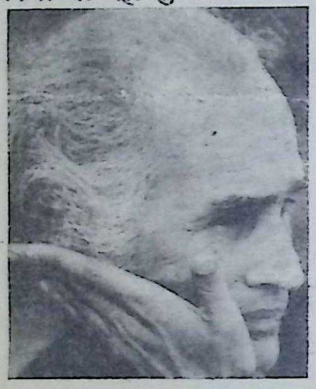

संवेदना के स्तर पर झकझोरा और वही उनकी विषय भूमि है.

1918 में ढाका में जन्मे परितोष वामपंथी रुझान के हैं, लेकिन 'मार्क्सवादी' या 'उदारवादी बुद्धिजीवी' जैसे फतवों की फुनगी लगाना उन्हें पसंद नहीं. एक व्यक्ति के तौर पर अपने आपको वे मानवजाति की तकलीफों, संघर्षों से जुड़ा हुआ पाते हैं और एक चित्रकार के रूप में अपने इसी जुड़ाव को व्यक्त करते हैं. ■

सरदार मान

सरदार सिमरनजीत सिंह मान का मानना है कि 'स्वर्ण मंदिर में सैन्य कार्रवाई से देश के सभी सिख पुलिस अधिकारी बहुत क्षुब्ध और नाराज हैं. इस मसले पर खासतौर से सशस्त्रबलों में हिंदू और सिख अधिकारियों के बीच स्पष्ट विभाजन हो गया है. कोई संकटपूर्ण स्थिति आने पर इसकी असली परीक्षा भी हो जायेगी.'

वे अकेले सिख पुलिस अधिकारी हैं, जिन्होंने सैन्य कार्रवाई के विरोध में अपने पद

से जून में इस्तीफा दे दिया था. आजकल वे भूमिगत हैं क्योंकि 'उन पर सरकारी गुप्तचरों की नजर लगी है.'

पिछले दिनों एक अंग्रेजी पत्रिका से हुई बातचीत में उन्होंने उत्तेजित होकर कहा : 'सरकार ने हमारी जड़ों पर हमला किया है. इस कार्रवाई के बाद अब हमारा धर्म, संस्कृति, जीवन, स्वतंत्रता, संपत्ति, सम्मान तथा हमारी स्त्रियों का आत्मसम्मान कुछ भी हिंदू भारत में सुरक्षित नहीं रह गया है?' ■

जैनिफर कैंडल

पिछले दिनों लंदन में कैंसर से एक लंबे संघर्ष के बाद पचास की उम्र में जेनिफर कैंडल का निधन भारतीय सिनेमा और रंगमंच के लिए एक दुखद समाचार है. जैनिफर अपने 'स्टार' पति शशि कपूर की तरह एक जाना पहचाना चेहरा भले ही न हो, लेकिन अपर्णा सेन द्वारा निर्देशित और बहुचर्चित अंग्रेजी फिल्म '36 चौरंगी लेन' की नायिका के रूप में जैनिफर ने भारतीय सिनेमा प्रेमियों के मन में एक आत्मीय जगह बना ली थी. अधिकतर फिल्म प्रेमी यह उम्मीद कर रहे थे कि इस फिल्म में अभिनय के लिए जैनिफर को सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय पुरस्कार मिलेगा, लेकिन उस साल राष्ट्रीय पुरस्कार मुजफ्फर अली की फिल्म 'उमराव जान' की नायिका रेखा को दिया गया. राष्ट्रीय पुरस्कार की जूरी हमारे यहां समय समय पर घपले करती रही है, लेकिन जैनिफर कैंडल के सशक्त अभिनय के मुकाबले में रेखा के 'ग्लैमर' के आगे जूरी का झुक जाना एक दुखद बात थी.

ब्रितानी मूल की होने के कारण जैनिफर कैंडल के लिए वैसे भी भारतीय सिनेमा में जगह बनाने के ज्यादा अवसर नहीं रहते थे. जेम्स आवरी और इस्माइल मर्चेंट ने 'वाम्बे टाकीज' में जैनिफर को मौका दिया

था. बाद में 'जुनून' में श्याम बेनेगल ने जैनिफर का इस्तेमाल किया और उसके बाद आयी '36 चौरंगी लेन'. यह फिल्म शायद जैनिफर को ही ध्यान में रखकर लिखी गयी थी. सत्यजित राय की ताजी फिल्म 'घरे बाहरे' में भी जैनिफर ने एक भूमिका निभायी है.

जैनिफर का जन्म एक ऐसे ब्रितानी परिवार में हुआ जहां फिल्म और रंगमंच का सक्रिय वातावरण था. बंबई में रहते हुए शशि कपूर के साथ जैनिफर ने जुहू में पृथ्वी थियेटर की स्थापना करके रंगमंच को एक नया आधार दिया. एक पत्रकार ने पृथ्वी थियेटर को शशि कपूर का ताजमहल कहा है. इधर शशि कपूर का झुकाव अच्छे सिनेमा और रंगमंच की तरफ बढ़ा है. जैनिफर के निधन के बाद शायद इस दिशा में वह और काम करना चाहें. ■

समय की शिला पर

सम्मान

- लंदन स्थित रायल एशियाटिक सोसायटी ने एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता के महासचिव **डा. चंदन राय चौधरी** को फेलोशिप देने का निश्चय किया है.

पुरस्कार

- दिल्ली की 'पंजाबी कला संगम' संस्था ने हिंदी फिल्म अभिनेता **नवीन निश्चल** को पंजाबी फिल्म 'आसरा प्यार दा' में उनके अभिनय के लिए श्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार दिया है.

नियुक्ति

- नेशनल डेयरी डेवलपमेंट बोर्ड के अध्यक्ष **डा. वी. कुरियन** को गुजरात कृषि विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया गया है.
- **वेंकट कृष्णन** ने पिछले दिनों दिल्ली परिवहन निगम के अध्यक्ष का पदभार संभाल लिया.

निधन

- भू. पू. केंद्रीय मंत्री, बिहार के भू. पू. मुख्यमंत्री और स्वतंत्रता सेनानी **भोला पासवान शास्त्री** लंबी बीमारी के बाद 10 सितंबर को नहीं रहे. वे 73 वर्ष के थे.
- स्वतंत्रता सेनानी **बाबूराम चौरसिया** का 12 सितंबर को कानपुर में देहांत हो गया. उनकी उम्र 62 वर्ष थी.
- रंगमंच के निर्देशक एवं अभिनेता **मार्कुस मर्श** का 10 सितंबर को नयी दिल्ली में निधन हो गया. वे कुछ समय तक 'इंडिया-2000' पत्रिका के संपादक भी रहे थे.
- संगीत निर्देशक **मेजर डी. डी. निंबालकर** का 13 सितंबर को कोल्हापुर में देहांत हो गया. मेजर की पदवी उन्हें कोल्हापुर के छत्रपति राजाराम महाराज ने दी थी. ■

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिरजू महाराज प्रसंग

एक सार्थक रेखांकन

नेमिचंद्र जैन

'बिरजू महाराज ने कथक को गौरव की पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया है. आज सभी कथक नर्तक उनसे प्रेरणा पाकर, जाने या अनजाने में उनका अनुकरण करते हैं. वे कथक के युग प्रवर्तक हैं और उन्होंने एक परंपरा कायम की है.' 'ऐसे गिने चुने ही कलाकार कथक क्षेत्र में आज जीवित हैं जिनका नृत्य बहुत बार देखने में भी मन को तसल्ली नहीं होती और जिनके नृत्य प्रदर्शन से सुंदरता के कई एक मूल तत्व सहज निखर आते हैं. बिरजू महाराज का नाम ऐसे दुर्लभ कलाकारों में अग्रणी है.' 'वह जब खुद नाचते हैं तो लगता है कि वह सिर्फ एक छंदमय-अंग संचालन नहीं बल्कि जीवंत बिंबों का अद्भुत समाहार है.' 'उत्कृष्ट नर्तक और उतने ही उत्कृष्ट नृत्य गुरु के रूप में, नृत्य और संगीत के क्षेत्र में एक सृजनशील प्रतिमा के रूप में, न सिर्फ कथक बल्कि अन्य शास्त्रीय नृत्य शैलियों में भी आज उनके समकक्ष कोई नहीं है.' 'आजकल ऐसा लगता है मानो अच्छे कथक नर्तकों का विस्फोट हो रहा हो. इसका श्रेय बिरजू महाराज की लगातार कोशिशों को, उनकी ईमानदारी, लगन और एकनिष्ठता को तथा कथक को और भी अधिक ऊंचाई तक ले जाने की उनकी क्षमता को ही है.'

ये हैं कुछ विचार और मंतव्य देश के विख्यात नर्तक बिरजू महाराज के संबंध में, जो क्रमशः मोहनराव कल्याणपुरकर, रोहिणी भाटे, जीवनपाणि, गोविंद विद्यार्थी और सुनील कोठारी जैसे नृत्य कला के, विशेषकर कथक नृत्य के विद्वानों और जानकारों ने प्रकट किये. अवसर था भोपाल में उस्ताद अलाउद्दीन खां संगीत अकादमी के चक्रधर नृत्य केंद्र द्वारा आयोजित बिरजू महाराज प्रसंग.

एक असाधारण कलाकार की देन को रेखांकित करने वाले इस दो दिन के समारोह में उनकी कला के प्रदर्शन और उनके बारे में विचार-विमर्श दोनों का संयोजन था और इन दोनों ही पक्षों के कई स्तर थे. विचार विमर्श में एक ओर बिरजू महाराज की कला के आरंभ और विकास, कथक नृत्य परंपरा में उनके स्थान और नृत्य के सौंदर्यशास्त्र में उनके योगदान पर चर्चा के दो सत्र थे, जिनमें उनकी कला और जीवन के बारे में निबंध पढ़े गये, बातचीत हुई. इन्हीं में एक में तीन वयोवृद्ध कथक नर्तक-शिक्षक रामकृष्ण शुक्ल, कृष्ण महाराज और मोहनराव कल्याणपुरकर ने बिरजू महाराज के बुजुर्गों से सीखी हुई विद्या के कुछ नमूने दिखाकर कथक के उत्तराधिकार का एक और पक्ष उजागर किया. एक अन्य सत्र में स्वयं बिरजू महाराज ने अपने आरंभिक जीवन और नृत्य के संबंध में अपने अनुभव सुनाये तथा उपस्थित श्रोताओं के बहुत से प्रश्नों के बहुत ही रोचक और विदग्धतापूर्ण उत्तर दिये.

बातचीत के इन सत्रों में भाग लेने वाले कुछ विद्वानों का जिक्र पहले किया गया, पर उसमें कई प्रकार से बेहद मौलिक और अभूतपूर्व योगदान था दिल्ली विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राचार्य और कथक नृत्य तथा हिंदुस्तानी संगीत के मर्मी विद्वान प्रोफेसर सुशीलकुमार सक्सेना का. उन्होंने बड़ी ही सरल और बोलचाल की भाषा के सहारे प्रदर्शनकारी कलाओं की विशिष्ट खूबियों और उनमें निहित बुनियादी सौंदर्य-शास्त्रीय मूल्यों का उद्घाटन किया. अनेक महत्वपूर्ण बातों के अलावा उनकी एक बड़ी ही सारगर्भित स्थापना यह थी कि संगीत और नृत्य की सूक्ष्मताओं और मर्म को पहचानने के लिए स्वयं कलाकारों की अपनी भाषा और नृत्य या संगीत के संबंध में उनकी उक्तियों और टिप्पणियों पर ध्यान देना बहुत जरूरी है, क्योंकि तभी किताबी सिद्धांतों के बजाय इन कलाओं के वास्तविक व्यवहार में छिपे सूत्रों को पहचाना जा सकता है.

मगर इस समारोह का सबसे उत्तेजक और आकर्षक अंश था बिरजू महाराज का अपूर्व नृत्य. नृत्य प्रेमियों और जानकारों से खचाखच भरे रवींद्र भवन में उस शाम बिरजू महाराज ने अपनी कला का ऐसा जीवंत और कसा हुआ प्रदर्शन किया जो बहुत दिनों तक याद किया जायेगा.

प्रदर्शन के पूर्वार्द्ध में उन्होंने नृत्य के साथ ही गतभाव के कुछ अत्यंत सुंदर और विशिष्ट रूप दिखाये. पर उत्तरार्द्ध में उन्होंने बैठकर भाव प्रदर्शन किया जो विदादीन रचित ठुमरी, दादरा और भजन पर आधारित था. इसमें उन्होंने गीतों की अलग अलग पंक्तियों को विभिन्न संदर्भों की अर्थ छटाओं के साथ जिस तरह अनेक प्रकार से कल्पनाशील चाक्षुष बिंबों द्वारा प्रस्तुत किया उससे कई बार कथक नृत्य में भावाभिनय के लिए विख्यात स्वर्गीय शंभु महाराज की याद आती थी. यह सहज ही कथक नृत्य के भावाभिनय को कथकलि, कूडिआट्टम या भरतनाट्यम शैलियों में मौजूद भावाभिनय परंपरा से जोड़ता था. रसिक दर्शक समाज के अनुरोध पर उन्होंने एक कजरी भी गाकर सुनायी.

यह सही है कि बिरजू महाराज के कथक प्रदर्शन में नृत्य के विभिन्न अंगों और पक्षों का ऐसा समग्र संयोजन नहीं है जो एक संपूर्ण कलात्मक नृत्यानुभव दे सके. उनका प्रस्तुतीकरण भी अन्य कथक नर्तकों की भांति टुकड़ों टुकड़ों में होता है, उसमें कोई संरचना या सुविचारित क्रम नहीं होता. इसलिए वह बार बार टूटता रहता है, जिससे कथक नृत्य को कोई स्पष्ट रूपाकार नहीं मिल पाता, मगर इस सीमा के बावजूद उनके नृत्य में शुरू से आखिर तक ऐसा आंतरिक तनाव और भावावेश था कि संरचना का यह अभाव किसी हद तक गौण पड़ जाता था.

बिरजू महाराज की सृजनात्मकता के एक और आयाम का आस्वाद सुलभ कराने के लिए अगले दिन दिल्ली के कथक केंद्र में उनके शिष्यों ने उनकी अनेक रचनाएं प्रस्तुत कीं. रचनाओं का चुनाव और क्रम बहुत सुचिंतित नहीं था. कुछ रचनाओं में संक्षेप की जरूरत थी और पूरे कार्यक्रम को छोटा करके अधिक चुस्ती और सफाई से प्रस्तुत करना भी आवश्यक जान पड़ता था. मगर उनमें से कई रचनाएं बहुत आकर्षक थीं और कथक ही नहीं पूरे भारतीय नृत्य के संदर्भ में एक अत्यंत सूक्ष्म सौंदर्यबोध और सजग कल्पनाशीलता को जाहिर करती थीं. शास्त्रीयता और समकालीन गतिशील सर्जना का एक अनूठा समन्वय उनमें मौजूद था.

विचार विमर्श और प्रदर्शनों के अलावा बिरजू महाराज के परिवार, जीवन और नृत्य से संबंधित छायाचित्रों की एक बड़ी प्रदर्शनी भी लगायी गयी थी. इस प्रकार, कुल मिलाकर, समारोह में एक असाधारण प्रतिभाशाली कलाकार का कृतित्व बड़े सार्थक ढंग से रेखांकित हुआ. इसमें कोई संदेह नहीं कि यह आयोजन एक 'महान नर्तक और सर्जक के अवदान को उसकी समूची विविधवर्णिता में देखने-परखने' के काम का बड़ा कल्पनाशील प्रयास था. ■

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृति समाचार

एक आयोजन फादर की याद में

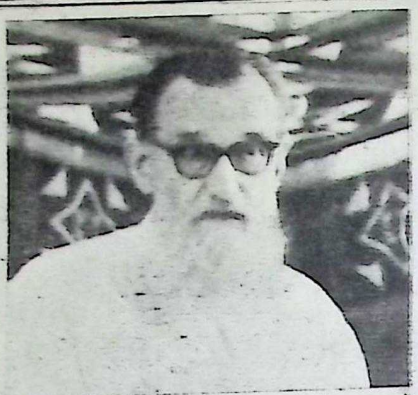

1 सितंबर, शाम पांच बजे, जेवियर समाज सेवा संस्थान, रांची स्थानीय हिंदी प्रेमियों से खचाखच भरा हुआ था. मौका था स्वर्गीय फादर कामिल बुल्के के 76वें जन्म-दिवस का. आयोजन फादर की जीवन शैली के अनुरूप ही था; सादा और गरिमामय.

1909 में बेल्जियम के एक गांव में जन्मे फादर लुवेन विश्वविद्यालय से इंजीनियरिंग करके 1935 में भारत आये थे. यहां इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उन्होंने एम. ए. और फिर डी. फिल किया. 1950 से '77 तक वे संत जेवियर कालेज, रांची के हिंदी-संस्कृत विभागाध्यक्ष रहे. 1947 में उन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया गया. कुल 176 कृतियां रचने वाले फादर द्वारा तैयार अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश आज भी एक मिसाल है. 17 अगस्त, 1982 को दिल्ली में उनका देहांत हो गया था.

इस वर्ष उनके जन्मदिवस आयोजन की विशेषता तीन नयी योजनाएं रहीं. एक, हरिवंशराय बच्चन द्वारा अगले वर्ष तक स्मृति ग्रंथ का संकलन. दो, उनके सहयोगी दिनेश्वर जी द्वारा उनके जीवन चरित का लेखन. तीन, उनके बारे में समय समय पर विभिन्न हिंदी लेखकों द्वारा की गयी टिप्पणियों का अमरसिंह द्वारा संकलन.

'कामिल बुल्के शोध संस्थान' के संचालक फादर पोनेट ने बताया कि उनकी 'रामकथा' का अंग्रेजी अनुवाद आस्ट्रेलिया के कैनबरा विश्वविद्यालय के डा. आर. के. बर्न तैयार कर चुके हैं और वह संभवतः इस वर्ष के अंत तक प्रकाशित हो जायेगा.

फादर कामिल बुल्के द्वारा स्थापित उक्त शोध संस्थान बिहार के सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तकालयों में है. हिंदी और संस्कृत की कोई दस हजार पुस्तकें इसमें हैं. फादर पोनेट ने बताया कि करीब दो हजार पुस्तकें गायब हैं, जिन्हें फादर बुल्के उदारतापूर्वक भूल जाने को कहते थे. फादर पोनेट 1938 से फादर बुल्के के साथ रहे हैं. उनका कहना है : 'ये फादर बुल्के की महानता थी कि ईसाई धर्म में विश्वास रखते हुए भी उन्हें तुलसी के राम प्रिय थे.' फादर पोनेट का कहना सत्य है कि 'फादर बुल्के एक वैज्ञानिक थे—दार्शनिक नहीं.'

—उपेंद्रप्रसाद सिंह

कुमाऊं में गूजते 'जागर' कैसेट

लोक संस्कृति को बचाने के लिए उत्तर-प्रदेश के कुमाऊं अंचल में विभिन्न माध्यमों से अनेक प्रयोग चलते रहे हैं. ऐसा ही एक नया प्रयास हाल में यहां की एक सांस्कृतिक संस्था 'जागर' ने तीन कैसेटों का एक सैट जारी करके किया है.

पहला कैसेट 'जनगीत' है. इन गीतों में लोकजीवन के दुख-दर्द का लेखा-जोखा है, जिनमें ऐसे समाज की परिकल्पना की गयी है जो अमीर-गरीब, ऊंच-नीच, छोटे-बड़े के संकरेपन से पूरी तरह मुक्त होगा.

दूसरे कैसेट का शीर्षक 'संस्कृति' है. इसमें अंचल के इतिहास को लोकगायकों के सिरमौर स्व. मोहनसिंह रीठागढ़ के सुपुत्र चंदनसिंह रीठागढ़ के स्वर में आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है.

तीसरे कैसेट का शीर्षक 'कविताएं' हैं. यह पिछले कैसेटों की तुलना में कुछ कुछ शिथिल-सा है.

इन कैसेटों का कुमाऊं के लोगों के बीच तो अपना एक महत्त्व रहेगा ही, बाहर बसे कुमाऊंनी लोगों को अपने बिछड़े परिवेश से जोड़ने के काम में भी इनकी एक भूमिका बन सकती है.

—महेश. बिष्ट

पिछले दिनों बंगलूर में प्रसिद्ध हिंदी लेखक मन्मथनाथ गुप्त ने क्रांतिकारी स्व. वासुदेव बलवंत फड़के की जीवनी 'अदम्य' का विमोचन किया (नीचे चित्र). इस मौके पर कन्नड़ के अभिनेता उदय कुमार, साहित्यकार गोरूर रामस्वामी अयंगार और जीवनी लेखक बाबू कृष्णमूर्ति की उपस्थिति उल्लेखनीय रही.

बूढ़ी उम्र के जवां राग

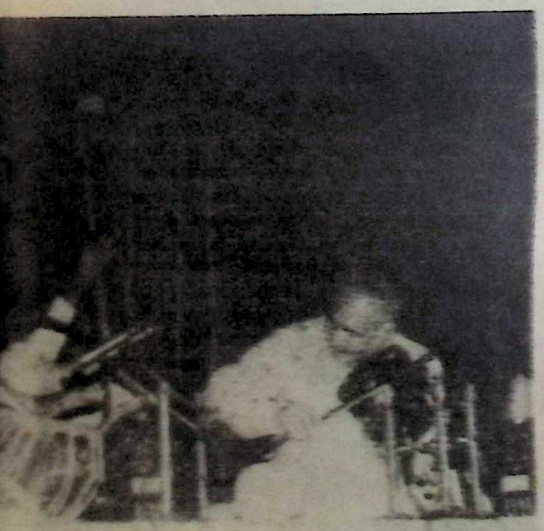

पश्चिमी वाद्य वायलिन को बहुआयामी ढंग से मुखरित कर उसे भारतीय वाद्य की सी पहचान देने वाले प्रख्यात वायलिन वादक, पद्मभूषण प्रोफेसर जोग साहेब का पिछले दिनों लखनऊ में जोरदार अभिनंदन हुआ. यह आयोजन 'भातखंडे हिंदुस्तानी संगीत महाविद्यालय', लखनऊ ने अपनी तीन दिवसीय 'भातखंडे जयंती' के अवसर पर किया. जोग साहेब इसी विद्यालय के अवकाश-प्राप्त शिक्षक हैं.

इस मौके पर जोग साहेब ने रवींद्रालय में जमा विशाल श्रोता समूह को लगभग डेढ़ घंटे तक अपने वायलिन वादन से मुग्ध रखा. उस्ताद अलाउद्दीन खां साहेब की 'नटविहाग' की दुतबंदिश 'झनन झनन बाजे पायलिया' की उनकी मधुर लयकारी पर पूरा वातावरण ही जैसे उन्मादित हो उठा. लखनऊ के सांस्कृतिक इतिहास में जोग साहेब के इस अभिनंदन समारोह को बराबर याद किया जायेगा.

—लक्ष्मीशंकर शुक्ल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बवासीर के मस्से—बिना आपरेशन सुखाने के लिए अनोखी दवा

प्रेपरेशन एच मलहम

मिनटों में खुजली और दर्द से छुटकारा पाइए

प्रेपरेशन एच से वास्तव में बिना आपरेशन मस्से सूख जाते हैं, सिर्फ बहुत ही गंभीर हालत को छोड़कर. बवासीर पुरानी हो तो भी प्रभावित तंतु जल्द ही भर जाते हैं और पीड़ा और खुजली से राहत मिलती है. प्रेपरेशन एच चिकनाहट देकर जलन से आराम तो दिलाती ही है, साथ ही शौच के समय भी कम तकलीफ होती है.

एप्लिकेटर के साथ 50 ग्राम, 30 ग्राम और 15 ग्राम की ट्यूबों में सभी केमिस्टों के यहां मिलती है.

*Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

25J PH-62-HN

दिनमान

पैनल में अपना विज्ञापन दीजिये और लाभ उठाइये

विज्ञापन-दर

(आकार 5.50 सें. मी. लंबाई × 5.50 सें. मी. चौड़ाई)

प्रति पैनल प्रति बार

केवल रु. 125.00

धर्मयुग से पैनल प्रकाशित कराने पर दिनमान-शुल्क में 25% छूट

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क कीजिए :

विज्ञापन व्यवस्थापक

दिनमान

7, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नई दिल्ली-110002.

फोन : 270161 (10 लाइनें)

बैनेट, कोलमैन एंड कं. लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए ऋचा जैन द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110 002 से मुद्रित व प्रकाशित. पंजी. कार्यालय, डॉ. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400 001. शाखाएँ : 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110 002; 139, लाभम रोड, अहमदाबाद-380 009; 105/7 ए. एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700 014.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंजीयत सं. D-(C)-183
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति—लाइसेंस सं. U-13

MADRAS
Regn. No. G6/IN/MS(C)/503

अब मिलने लगा है

डीलक्स निरोध

चिकनाईयुक्त

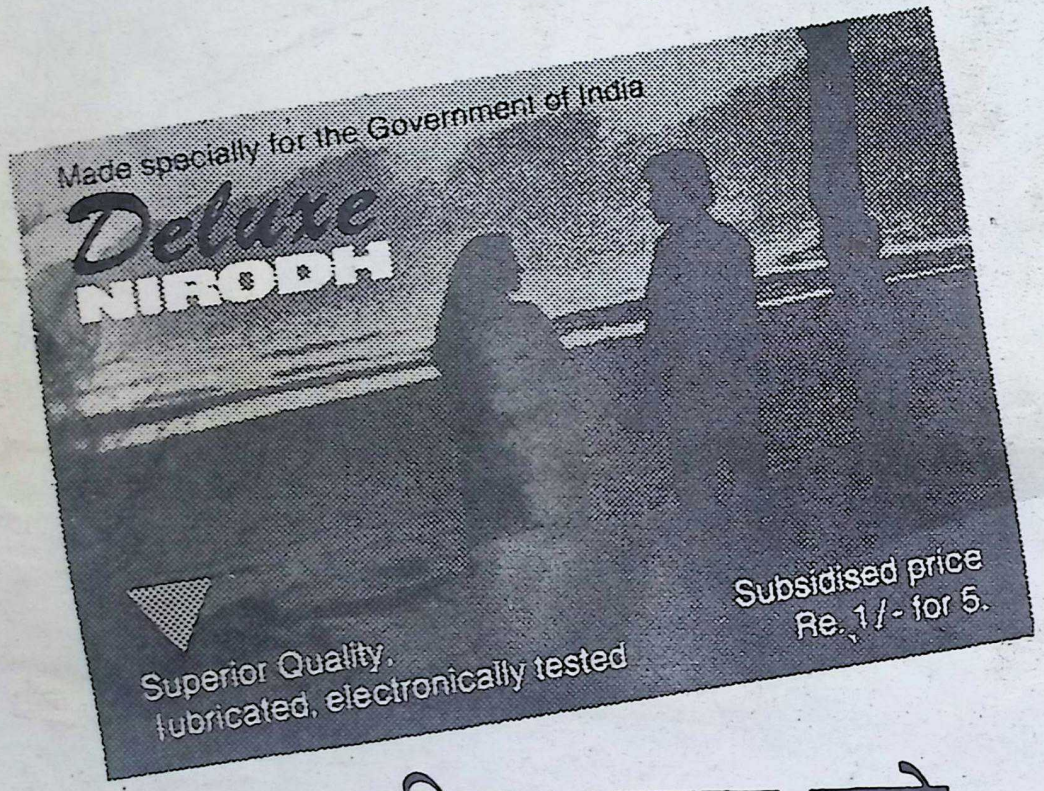

बढ़िया पसन्द वाले दम्पतियों के लिए

1 रु० के 5

*उत्तम कोटि
*इलेक्ट्रानिक तरीकों से परखा गया

सभी बड़े शहरों में बिकता है

davp 84/28

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu